धारा...47...ग्रंथांक (252)...

# पुण्य-पाप मीमांसा गीताञ्जली

## (गद्य-पद्यमय)

सृजेता-आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव

### पुण्य स्मरण

ग.पु.कॉ. सागवाड़ा में प्रवचन स्वाध्याय व दीर्घ प्रवास के उपलक्ष्य में

### अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. श्रीमती मीना देवी श्री विमल कुमार जी मातश्री गुणमाला, ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा
2. ब्र. खुशपाल जी ब्र. आशा देवी जीतमल जी जैन, ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा
3. श्रीमती आनन्दी बहन स्व. श्री राजमल जी जैन, ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा
4. श्रीमती जीना देवी श्री विपीन कुमार जी सिंघवी
5. श्रीमती विमला देवी श्री अनोखीलाल जी भूता
6. श्रीमती प्रितीबाला श्री सुरेश कुमार जी
7. श्री सुभाष जी रूपचन्द जी (केशरीयाजी वाले)

ग्रन्थांक-252 प्रतियाँ-500

संस्करण-2016 मूल्य-51/- रु.

### सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

**आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त**

**(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान**

**द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा**

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,

उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

**(2) डॉ. नारायणलाल कछारा**

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001

फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622

E-mail:nlkachhara@yahoo.com

# आधुनिक पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ ज्ञानदानी

## श्रमणाचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव!

## (समस्त भौतिक दान से भी श्रेष्ठ निरवद्य दान है ज्ञानदान!)

**-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

**(चाल : सुनो सजना पपीहे ने कहा.....)**

आधुनिक जन यहाँ आओ...शिक्षा ज्ञान आनंद पाओ...
आत्म विज्ञान अनुभव (को)...कनक गुरुकुल में पा जाओ...
आधुनिक जन...(स्थायी)...

महाज्ञानी महाध्यानी...ज्ञान-विद्या-महादानी...
विश्वव्यापी कनक गुरुवर...प्रज्ञाशील-गणी-गुणीऽऽऽ
यहाँ आओ जहाँ वालों...यहाँ आओ हे दिल वालों...
कि पाओ है सुज्ञान ये...आधुनिक जन...(1)...

प्राप्त समस्त शास्त्र...लोक स्थिति (के) प्रवक्ता...
सर्व विद्या अधिज्ञानी...बहु अवधानी विज्ञानीऽऽऽ
युग नायक पुरोगामी...सत्य-तथ्य पारगामी...
आधुनिक विज्ञान से...आधुनिक जन...(2)...

पृथ्वी के अरबों जन में...तुमसा न कोई दानी...
उद्योगपति वैज्ञानिक...तुमरे चरण नमामिऽऽऽ
ज्ञान दान है निरवद्य...इसके सम न कोई दान...
चक्री राजा के दान से...आधुनिक जन...(3)...

इनकी व्यापक वाणी...श्रद्धा से जो सुने है...
वे पावे ज्ञान व्यापक...प्राच्य व आधुनिक हैऽऽऽ
अणु से ले ब्रह्माण्ड तक...निगोद से तो सिद्धों तक...
धर्म-दर्शन-विज्ञान है...आधुनिक जन...(4)...

देवेन्द्र नरेन्द्र चक्री के...राज वैभव में न है सुख...
आध्यात्मिक ज्ञान से...मिले है अनंत सुखऽऽऽ
'कनक' गुरुवर इसे जाने...'सुविज्ञ' जन इसे पाने...

सतत करने सुज्ञान है...आधुनिक जन...(5)...
नन्दौड़, दिनांक 10.12.2015, रात्रि 9.20
(यह कविता मार्क जुकरबर्ग (फेसबुक) के दान से भी प्रभावित है!)

# कनक गुरु का वैश्विक आध्यात्मिक गुरुकुल

**-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

**(चाल : आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ.....)**

आओ बच्चों तुम्हें सुनाएँ...गाथा कनक गुरुकुल की...
इस गुरुकुल को नमन करो...यहाँ वाणी विश्व गुरु की...
वन्दे गुरुवरम्...वन्दे गुरुकुलम्...(ध्रुव)...

इस गुरुकुल में ज्ञान है मिलता...आत्मा व परमात्मा का...
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक के...परम सत्य-तथ्य का...
आत्मा को परमात्मा बनाने की...शिक्षा/(विद्या) होती प्रमुख...
अन्य समस्त ज्ञान-विज्ञान...होता आनुषंगिक...ऽऽऽ
इस गुरुकुल के विद्यार्थीगण...साधु व विज्ञानी की...इस गुरुकुल...(1)...

जीव विज्ञान व भौतिक ज्ञान...मनोविज्ञान व गणित...
न्याय-राजनीति-अर्थशास्त्र...भूगोल-खगोलशास्त्र...
भाषा व्याकरण आयुर्विज्ञान...कर्म सिद्धांत अनेकान्त...
आकाश काल व विश्व व्यवस्था...का ज्ञान मिले व्यापक...ऽऽऽ
बिना भेद-भाव ग्रहण करते...श्रद्धा-प्रज्ञाधारी की...इस गुरुकुल...(2)...

आओ हम सब इस गुरुकुल के...ज्ञानानंद का लाभ वरें...
आनंददायी शिक्षा पाकर...विद्या का सम्मान करें...
अन्त्योदय से सर्वोदय कर...जन-गण का कल्याण करें...
सर्वज्ञ बनने तक हम सब...ज्ञानार्जन अविराम करें...ऽऽऽ
ऐसे वैश्विक गुरुकुल के...'सुविज्ञ' बने विद्यार्थी की...इस गुरुकुल...(3)...

नन्दौड़, दिनांक 24.11.2015, रात्रि 10.40

# कनकनन्दी गुरुवर की जिज्ञासा व समाधान पद्धति

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : बहुत प्यार करते है.....)**

कनकनन्दी गुरुवर है आध्यात्मिक श्रमण।
सभी विधा के ज्ञानी2 गुरुवर भगवन्।। (ध्रुव)

जिज्ञासु भव्य जन मेरी बात सुनो।
पंथ-मत से परे जिज्ञासा करो।
क्रियाकाण्ड से परे2 ही प्रश्न करो।। (1)

आगमनिष्ठ प्रश्न हो पर उचित समय न हो।
सन्दर्भ न हो तो प्रश्न भी न करो।
सन्दर्भ समय हो तो2 ही उत्तर पाओ/(गहो)।। (2)

अध्यात्म योगी का समय मूल्यवान।
मूल्यहीन प्रश्न कर न करो मूल्यहीन।
अनुचित प्रश्न पर2 रखते है मौन।। (3)

सामान्य जिज्ञासा के समाधान चाहो।
सूरिकृत ग्रंथों का पठन चिन्तन करो।
सभी विधा के ग्रंथों का2 किया है सृजन।। (4)

गहन व सूक्ष्म/(वैज्ञानिक विद्वानों के) प्रश्न होने पर।
प्रखर प्रज्ञा अनुभव से करते समाधान।
आत्मा का शोध ही है2 परम विज्ञान।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 24.11.2015, मध्याह्न

# गुरु देशना से संयम का पालन करूँगा

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : दुनिया में हम आये है तो.....(मदर इण्डिया))**

साधक हूँ मैं तो साधना करता ही रहूँगा।
मुक्ति पथिक हूँ तो मोक्ष प्राप्त करूँगा।। (ध्रुव)

पढ़-पढ़ के गुरुवर से ज्ञान प्राप्त करूँगा।

ज्ञान के द्वारा स्वात्मा का ध्यान करूँगा।
ध्यानी बन के2 अष्ट कर्म नष्ट करूँगा।। मुक्ति पथिक...(1)
ज्ञान रूपी जल से अज्ञान मल धोऊँगा।
गुरु देशना से माँ जिनवाणी को सुनूँगा।
ज्ञान-तप-वैराग्य से2 (पूर्ण) संयम पालूँगा।। मुक्ति पथिक...(2)
पंचम काल हीन संहनन अल्पायु है मेरी।
निज को निज में पाने की भावना है मेरी।
स्वाध्याय से आत्म2 ज्ञान प्रगट करूँगा।। मुक्ति पथिक...(3)
भेद विज्ञान साबुन समरस शुद्ध नीर।
अन्तर आत्मा धोबी धोवे निज गुण चीर।
चारों अनुयोगों का2 ज्ञान करता ही रहूँगा।। मुक्ति पथिक...(4)
अनादि से मोह से भ्रमता ही रहा हूँ।
मिथ्यात्व के प्रभाव से दुःख पाता रहा हूँ।
गुरु से बोधी प्राप्त कर2 समदृष्टि बनूँगा।। मुक्ति पथिक...(5)
नन्दौड़, दिनांक 30.11.2015, प्रातः 8.10

# आचार्यश्री कनकनन्दी जी का भक्तिपूर्ण आह्वान

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : दर्शन दो घनश्याम नाथ मोरे.....)**

दर्शन दो 'गुरु कनक' आज मोरी अखियाँ प्यासी रेऽऽऽ2 (ध्रुव)
द्वार ज्ञान के जब तू खोले, आगम ज्ञान की घुट्टी घोले।
ज्ञानामृत घुट्टी प्राशन करके, बने हम ज्ञानी रेऽऽऽ।। दर्शन...
देश-विदेश के विज्ञ जब आवे, तब ज्ञान की गरिमा जाने।
धर्म-विज्ञान की बोधी पाकर, बने सुज्ञानी रेऽऽऽ।। दर्शन...
सहज-सरलता की प्रतिमूरत, माँ जिनवाणी की है सूरत।
समता-शांति पाठ पढ़ाकर, मैं से मिलावे रेऽऽऽ।। दर्शन...
हर श्रद्धालु की तू है धड़कन, परमागम तब है मनभावन।
बुद्धि परे जो श्रद्धा से जाने, वात्सल्य पावे रेऽऽऽ।। दर्शन...
ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 22.12.2015, मध्याह्न 2.55

# कनकनन्दी गुरुवर की विशेषताएँ

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : ऐ मेरे दिले नादाँ....., चिट्ठी न कोई संदेश.....)**

जहाँ गुरुवर के चरण पड़े वह पावन भूमि है।
गुरु चरणों में आकर के विनय से झुक जाना।। (ध्रुव)

प्रज्ञायोगी गुरुवर स्वाध्याय तपस्वी है।
उनके आशीष से चिन्तन बदलता है।

शुभ नाम को गुरुवर के रटती हूँ मैं आठों याम।
तेरे ज्ञान के दीपक से मिथ्यातम मिटता है।। जहाँ...(1)

अनादि से भटका था स्व का न ठिकाना था।
पर को माना अपना स्व से न नाता था।

अब एक तमन्ना है बस मैं को ही जानूँ।
'मैं' के द्वारा 'मैं' को 'मैं' में ही पा जाऊँ।। जहाँ...(2)

गुरुवर के समवशरण में आगम की वाणी है।
सिद्धांतों को उदाहरण से सुगम वे करते है।

वात्सल्य भावना से अध्यापन कराते है।
कल्याण हो सब जीवों का यही मंगल भावना है।। जहाँ...(3)

प्रकृति प्रेमी गुरुवर ग्रामों में विहार करे।
मेवाड़ व वागड़ के ग्रामों में निवास करे।

सरल सहज प्रवृत्ति गुरुवर के मन भाये।
कनकनन्दी गुरुवर तुम्हें शत-शत वंदन है।। जहाँ...(4)

मम जीवन संगीत की सरगम हो तुम गुरुवर।
मम जीवन नौका के खेवटीया तुम गुरुवर।

मम जीवन वीणा के तुम तार मिला देना।
ये बूँद जो बिछुड़ी है सागर से मिला देना।। जहाँ...(5)

नन्दौड़, दिनांक 06.12.2015, रात्रि 8.00

# स्वात्म (मैं) प्रार्थना/ध्यान

## (स्वात्मा (मैं) का व्यापक स्वरूप)

**-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

**विविध चाल भाव युक्त आध्यात्मिक गान-**

**(विविध चाल : तू ही माता..तू ही पिता है..., तुम दिल की धड़कन..., सायोनारा....., जब दीप जले आना....., दिल है छोटा सा....., कोई दीवाना कहता है....., फूल तुम्हें भेजा है....., छूकर मेरे मन को....., कसमें वादे प्यार वफा सब....., ज्योति कलश छलके....., हमको मन की शक्ति देना....., ऐ मालिक तेरे बंदे हम....., छोटी-छोटी गैया....., आगे भी जाये न तू....., बिन गुरु ज्ञान नहीं है.....(मन तड़पत)....., अपनी आजादी को हम.....)**

मैं हूँ सिद्ध (शुद्ध)...मैं हूँ बुद्ध...

मैं हूँ सत्य (शाश्वत)...मैं हूँ चिद्रूप (चेतन)

मैं हूँ आनंद (परमानंद)...मैं हूँ दृष्टा...

मैं हूँ द्रव्य...मैं हूँ तत्त्व...

मैं हूँ विषय...मैं हूँ पदार्थ...

मैं हूँ स्वामी (प्रभु)...मैं हूँ सहायक...

मैं हूँ अरिहन्त...मैं हूँ भगवन्त...

मैं हूँ आचार्य (गणी)...मैं हूँ गणवन्त (गुणी)...

मैं हूँ लक्ष्य...मैं हूँ प्राप्य...

मैं हूँ धर्म...मैं हूँ तीर्थ...

मैं हूँ शक्तिपुञ्ज...मैं हूँ ज्ञानानंद...

मैं हूँ स्वयंभू...मैं हूँ सनातन...

मैं हूँ अनादि...मैं हूँ अनिधन...

मैं हूँ अनंत...मैं हूँ गुणगण...

मैं हूँ सर्वव्यापी...मैं हूँ सर्वज्ञ/(सुविज्ञ)...

नन्दौड़, दिनांक 06.11.2015, रात्रि 10.05

# माँ जिनवाणी के लाड़ले सपूत वैश्विक सद्गुरु कनकनन्दी सूरी

**-श्रमणी आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : तुझे सूरज कहूँ या चन्दा....., ऐ मेरे वतन के लोगों.....)**

तुम्हें ज्ञानी कहूँ व ध्यानी...हे आत्म अनुभवी स्वामी...
हे आगम के अधिज्ञानी...अनेकांतमयी श्रुतज्ञानी...

अरिहंत कहूँ या सिद्ध...आचार्य कहूँ या पाठक...
विज्ञानी मुनीश्वर ध्यानी...वैज्ञानिक हे जगनामी...(ध्रुव)...

मैं कब से भटक रहा था...चौरासी के इस मेले में...
भव-भव में भटका मैं तो...दुःख भोगा हूँ मैं अकेले...
अब शरणा तेरी आया...मुझे मिल गया तेरा सहारा...हे आगम...

सत्य साम्य सुख रूप...मैंने जाना 'मैं' का स्वरूप...
मैं तो स्वयं ही हूँ...इस ब्रह्माण्ड का भूप...
'मैं' के श्रद्धान से अब तो...हो जाए भव से पारा...हे आगम...

अब आपकी निश्रा में ही...मुक्ति का पथिक बना हूँ...
अब परमागम के सहारे...मैं तिर जाऊँ भव सागर...
तव अनुकम्पा से मुझको...मिला सम्यग्ज्ञान सहारा...हे आगम...

ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 23.12.2015, प्रातः 7.40

# कनकनन्दी गुरुवर की 'यशोगाथा'

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : आल्हा (बुंदेलखंडी).....)**

कनकनन्दी वैश्विक गुरु, इनकी महिमा कही न जाय।
इनकी गौरव यशगाथा को, अल्प बुद्धि से तुम्हें सुनाय।। (ध्रुव)

इनको जीवन सहज सरल है, मन में नित्य आनंद समाय।
कुट कपट को लेश नहीं है, समता में वे सतत रहाय।

आत्मा को ही ध्यान करते है2 आत्मा को ही पाना चाहे।

भावों से वे इसी काल में, मोक्ष पुरी को जाना चाहे।। (1)

देश-विदेश के मनिषी आवे, आध्यात्मिकता उन्हें पढ़ाय।
कर्म सिद्धांतादि कठिन विषय का, शोध-बोध उनसे करवाय।

देश-विदेश में जाकर शिष्य2, गुरु ज्ञान झण्डा फहराय।
विश्वविद्यालयों में अनेक, साहित्य (कक्ष) स्थापन कराय।। (2)

जंगल में मंगल वे करते, हल्दीघाटी में भी जाय।
अतिशय क्षेत्र सीपुर में, चौमासा में गीतांजली रचाय।

नन्दौड़ ग्राम में चौमासा कर2, आदर्श प्रस्तुत कराय।
चौका लगा व वैयावृत्ति कर, श्रावक जन तो पुण्य कमाय।। (3)

समवशरण सम शोभा न्यारी, साम्य सुखामृत जब वे पढ़ाय।
कलिकाल सर्वज्ञ सम लगते, दिव्य वाणी उनकी खीर जाय।

अध्यातम को दुरूह विषय भी2, उदाहरण से सरल कराय।
अल्पमति हम बालक गण को, (हमरी) बुद्धि अनुसार समझाय।। (4)

वागड़ प्रांत को पुण्य उदय है, गुरुवर को मेवाड़ भी भाय।
अन्य प्रांत के श्रावक आकर, चलने को अनुरोध कराय।

ऐसे गुरु भाग्य से मिलते2, अपने आत्मा को ज्ञान कराय।
जुग-जुग जिये हमरे गुरुवर, सान्निध्य पाकर आनंद मनाय।। (5)

विमलनाथ चैत्यालय में बैठ के, हमने आल्हा दिया बनाय।
मगसीर वदी अष्टमी का दिन, पच्चीसौ ब्यालीस वीर निर्वाण।

गुरुवर हमे सद्बुद्धि देवे2, आत्म कल्याण को भाव जगाय।
हाथ जोड़कर शिश नवावे, तव चरणों में करे प्रणाम/(सुवत्सल करे प्रणाम)।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 03.12.2015, मध्याह्न 1.35

# गुरु गुणगान कर लो

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : श्री सिद्धचक्र का पाठ.....)**

श्री गुरुवर का गुणगान, करो धर ध्यान, भाव से प्राणी।

करो गुरुवर की अगवानी।। (ध्रुव)

गुरु नाम सुमरन करने से, उनके अनुशीलन चिन्तन से।
हो जावे पापों की हानि।। करो...(1)

गुरु दर्शन अर्चन वंदन से, मिटता है भ्रम का तम मन से।
निज शुद्ध स्वरूप को समझे भव्य प्राणी।। करो...(2)

भक्ति से मन हर्षाता है, उनके गुण में मन रमता है।
हम बन जाये उन सम ज्ञानी।। करो...(3)

गुरु नाम का निश-दिन जाप करो, उनकी मन से वैयावृत्ति करो।
निश्चित ही बदले जिन्दगानी।। करो...(4)

गुरु भक्ति करो मन-वच-तन से, छूट जावोगे भव बंधन से।
सुवत्सलता से मिलता आशीष प्राणी।। करो...(5)

अक्षमा भाव ना कभी रखे, दश धर्म स्वभाव में ही रहे।
गुरु मुख से सतत सुनो जिनवाणी।। करो...(6)

जिनवर के वे लघुनंदन है, कुंथुसूरि के प्रिय नंदन है।
सबने गुरु ज्ञान की महिमा/(गरिमा) बखानी।। करो...(7)

सत्य साम्य सुखामृत नित्य झरे, शिवरमणी को वरने के भाव धरे।
गुरु शीघ्र ही पहुँचेंगे 'शिव रजधानी'।। करो...(8)

नन्दौड़, दिनांक 03.12.2015, रात्रि 8.00
(सिद्धचक्र विधान के अवसर पर बनायी)

## (वैश्विक गुरुंची जीवनगाथा व यशोगाथा)

# वैश्विक गुरु कनकनन्दींचे व्यक्तित्व आणि कृतित्व

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : त्रैलोक्यपति तूं झाला (पोवाडा).....)**

वैश्विक गुरु तूं झाला विश्व नमिती तुजला।
कनकनन्दी गुरुराया मम वंदन तव पद-कमला।।

कुंथुसागर गुरुराया तव दीक्षा दाता बनला।
तव दीक्षा साक्षी बनला श्री बाहुबली जिनराया।।

नश्वरा जाणी संसारा
तूं विरक्त झाला धीरा
जिंकोनी मोहा प्रबला

जागृता तीव्र वैराग्या त्यागीले मात पीत्याल्या।
जाऊनी गोमटेश्वरला धारीली दिगम्बर मुद्रा।। (1)

विजयामती आर्यिका
तव प्रथम शिक्षा दाता
विमलसागर गुरुराया

तव दीक्षा प्रेरक बनले द्वीशताधिक साधु जमले।
देशभूषण विद्यानंदी यतिवरांनी आशीष दिधले।। (2)

स्वाध्याय करीशी फार
सोडनी विभावांचा भार
कीर्ति पसरली थोर

स्वाध्याय तपस्वी बनला निज आत्म स्वरूपी रमला।
परलक्ष्या त्या बहिरंगा लवलेशही ना तो उरला।। (3)

निज स्वभाव केवलज्ञाना
तव दिव्य प्रकाशी आत्मा
सुख समता शांति दाता

संसार होऊनी पार तूं शुद्धातम बननार।
सतत भावना भावी मुक्ति कन्या वरनार।। (4)

भौतिक विज्ञानी शिष्य
अध्यात्म जिज्ञासा नित्य
यशोगाथा तव गाणार

सुविज्ञ मनिषी आहे देश विदेशी जाये।
तव ज्ञानाचा प्रचार वात्सल्य भावना धार।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 11.12.2015, मध्याह्न 1.40

# पुण्य-पाप मीमांसा

## विषयानुक्रमणिका


| अ.क्र | विषय | पृ.सं. |
|---|---|---|
| 1. | आधुनिक पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ ज्ञानदानी | 2 |
| 2. | कनक गुरु का वैश्विक आध्यात्मिक गुरुकुल | 3 |
| 3. | कनकनन्दी गुरुवर की जिज्ञासा व समाधान पद्धति | 4 |
| 4. | गुरु देशना से संयम का पालन करूँगा | 4 |
| 5. | आचार्यश्री कनकनन्दी जी का भक्तिपूर्ण आह्वान | 5 |
| 6. | कनकनन्दी गुरुवर की विशेषताएँ | 6 |
| 7. | स्वात्म (मैं) प्रार्थना/ध्यान | 7 |
| 8. | माँ जिनवाणी के लाड़ले सपूत वैश्विक सद्गुरु कनकनंदी सूरी | 8 |
| 9. | कनकनन्दी गुरु की 'यशोगाथा' | 8 |
| 10. | गुरु गुणगान करलो | 9 |
| 11. | वैश्विक गुरु कनकनन्दींचे व्यक्तित्व आणि कृतित्व | 10 |
| | **पुण्य-पाप मीमांसा** | |
| 1. | साधुओं की सामूहिक परमात्मा प्रार्थना | 14 |
| 2. | अल्प पाप बंध कारक शुभभाव भी करणीय | 15 |
| 3. | कर्त्ता व भोक्ता स्वयं जीव | 16 |
| 4. | अज्ञानी मोही व विपरीत भाव व व्यवहार | 17 |
| 5. | रागी द्वेषी मोही के भाव व्यवहार तथा इनसे विपरीत आध्यात्मिक जन | 18 |
| 6. | निर्दोष सर्वज्ञ भगवान् ही जानते हैं परम सत्य | 22 |
| 7. | हर सुज्ञान की उपयोगिता | 23 |
| 8. | आगम ज्ञान व शुद्धात्मा भावना बिना मुक्ति नहीं | 25 |
| 9. | पूजा का स्वरूप व फल | 31 |
| 10. | शुभ व शुद्ध भाव के अचिन्त्य फल | 31 |
| 11. | धर्म व आध्यात्म में समानता व अन्तर | 41 |
| 12. | विश्व के सभी जीवों की अवस्थाएँ व मोक्ष अवस्था | 46 |
| 13. | मुझे चाहिए लोकोत्तर ज्ञान-भान-व्यवहार | 51 |
| 14. | नीच मानवों की अभिमान प्रवृत्तियाँ व उसकी समस्याएँ | 66 |

| | | |
|---|---|---|
| 15. | निन्दा दोष एक : पाप अनेक | 67 |
| 16. | हित-मित-प्रिय बनाम हित-अमित-अप्रिय | 73 |
| 17. | परिग्रह : महापाप क्यों? | 74 |
| 18. | पर सुधार के पूर्व मैं स्व-सुधार करूँ! | 75 |
| 19. | मेरे आध्यात्मिक अनुभव में दृढ़ता बढ़ने के कारण व परिणाम | 85 |
| 20. | रत्नत्रय ही है मेरा परम-वैभव | 94 |
| 21. | सिद्ध भगवान् से मुझे प्राप्त परम सुख के सूत्र | 95 |
| 22. | मेरी कहानी माँ जिनवाणी से जानूँ | 96 |
| 23. | मेरी भविष्यवाणी... जिनवाणी के जुबानी | 97 |
| 24. | मैं प्रशंसनीय गुणी बनूँ व गुण-गुणी की प्रशंसा करूँ | 98 |
| 25. | मैं न निंद्य बनूँ न निंदा करूँ | 100 |
| 26. | अनुभवात्मक प्रतिप्रश्न से मुझे प्राप्त लाभ | 102 |
| 27. | विज्ञान व गणित से भी मुझे मिल रहे है लाभ | 103 |
| 28. | मेरी ज्ञानदान की भावना | 104 |
| 29. | आधुनिक अस्त-व्यस्त-संत्रस्त जीवन की करुण कहानी | 105 |
| 30. | आधुनिक विश्व मानव की विडम्बनाएँ | 106 |
| 31. | अभी भारत की विद्या (शिक्षा) मुक्ति के परिवर्तनों में भुक्ति से लेकर मृत्यु के कारण बन रही है! | 107 |
| 32. | भारत की समस्याओं के प्रमुख कारण | 108 |
| 33. | बच्चों की सहज शिक्षा पद्धति | 109 |
| 34. | बच्चों की सहज शिक्षा पद्धति | 110 |
| 35. | वैवाहिक जीवन की समस्याएँ | 111 |
| 36. | आनंद जीव का प्रमुख गुण व उससे प्राप्त अनंत लाभ | 112 |
| 37. | भाव विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म | 120 |
| 38. | पर दुःख से दुःखी महान् जन तो पर दुःख से संतोषी होते दुर्जन | 125 |
| 39. | चातुर्मास कर्त्ता परिवार एक-उपलब्धियाँ अनेक | 130 |
| 40. | ग्राम-जंगल आदि में हमारे चातुर्मास के उद्देश्य व फल | 131 |
| 41. | चातुर्मास कर्त्ता एक उपलब्धियाँ अनेक | 132 |
| 42. | भक्ति-भावना-समता-शांति के साम्राज्य स्वरूप चातुर्मास सम्पन्न | 134 |
| 43. | तब ये पापी मन पावन होगा! | 135 |
| 44. | मेरा लक्ष्य निर्बन्ध व सीमातीत | 135 |

# साधुओं की सामूहिक परमात्मा प्रार्थना

**(चाल : ऐ मालिक तेरे बन्दे हम.....)**

हे! परमात्मन् तेरे भक्त हम...तेरी भक्ति से बने भगवन्...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...करे तेरा ही चिन्तन-मनन...
हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(ध्रुव)...

तव ज्ञानार्थे पढ़े आगम...तव ध्यानार्थे एकाग्र मन...
तव चिन्तन में प्रमुदित मन...तव प्राप्ति हेतु बने श्रमण...
अरिहंत-सिद्ध व आचार्य...उपाध्याय-साधु तेरे रूप...
तेरा ज्ञान करे...हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(1)...

अर्हन-सिद्ध पूर्ण परमातम...शेष तीनों आंशिक परमातम...
पूर्ण परमात्मा बनना चाहे हम...अतः अन्तर आतम बने हम...
आत्म विशुद्धि समता शांति (से)...हमें बनना है परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(2)...

ख्याति-पूजा-लाभ त्यागे हम...राग-द्वेष-मोह त्यागे हम...
ईर्ष्या-घृणा व तृष्णा त्यागे हम...कट्टर संकीर्णता त्यागे हम...
विकल्प-संक्लेश त्यागे हम...अपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागे हम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(3)...

तव आराधना-पूजा से...तव प्राप्ति के प्रयत्न से...
अहंकार त्याग स्वानुभवी बने...अशुभ से शुभ-शुद्ध बने हम...
अन्तर आतम से (बने) परमातम...'कनक' शुद्ध रूप परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(4)...

(यह कविता ''ध्यान-सूत्राणि'' (आचार्य माघनन्दीकृत) से भी प्रभावित)

नन्दौड़, दिनांक 28.09.2015, रात्रि 9.30

# अल्प पाप बंध कारक शुभकाम भी करणीय

## (शुभ बिना अशुभ (पाप) ही संभव न कि शुद्ध (मोक्ष) संभव)

**(तर्ज : एकांत मौन में मैं.....)**

पावन भाव से जो धर्म करता, ख्याति पूजा लाभ परे कार्य करता।
सिंधु के समान वह पुण्य बांधता, बिन्दु के समान वह पाप बांधता।। (धृ.)

सेवा दान व जो परोपकार करता, आहार औषधि से जो वैयावृत्ति करता।
मंदिर मूर्ति का (जो) पंचकल्याण करता, पाप से अधिक वह पुण्य बांधता।।

पाप निर्जरा भी उसकी अधिक होती, आत्मविशुद्धि भी अधिक होती।
आत्मिक उन्नति भी इसी से होती, परंपरा से उसे मुक्ति मिलती।। (1)

असि मसि कृषि वाणिज्य सेवा से, पुण्य बंध न होता शिल्प काम से।
ये सब होते है आरंभ (के) काम, जीविका निर्वाह हेतु भौतिक/(सांसारिक) काम।।

पाप बंध इसी से होता प्रचुर, द्रव्य भाव हिंसा होती प्रचुर।
अविपाक निर्जरा न होती इसी से, मोक्ष उपलब्धि न होती इसी से।। (2)

भोगोपभोग व फैशन-व्यसनों से, हिंसा झूठ चोरी कुशील संग्रह से।
ईर्ष्या द्वेष घृणा व तृष्णा मोह से, पाप ही बंध होता सांसारिक काम से।।

मोक्ष हेतु शुभकाम सदा करणीय/(विधेय), अन्यथा अशुभ काम होगा निश्चय।
अशुभ कार्य से जो पाप संचय होता, शुभकार्य से उसे क्षय विधेय।। (3)

शुभ से ही शुद्ध होता है प्राप्त, अशुभ से शुद्ध न होता प्राप्त।
शुभ बिना अशुभ होगा अवश्य, अशुभ से पाप होगा अवश्य।।

सुलभ होते है अशुभ के काम, सुलभ न होते है शुभ के काम।
अशुभ से परे शुभ-शुद्ध ही ग्राह्य, 'कनकनन्दी' को अध्यात्म प्रिय।। (4)

नन्दौड़, दिनांक 22.11.2015, रात्रि 11.00

विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत 'पुण्यपाप मीमांसा', 'भाग्य पुरुषार्थ, कर्म सिद्धांत' आदि ग्रंथ पठनीय।

# कर्त्ता व भोक्ता स्वयं जीव

## (अच्छे-बुरे या धर्म सब कुछ जीव स्वयं के लिए करते)

**(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)**

जो कुछ भी जीव करते हैं व सोचते, स्वयं के लिए ही वे करते हैं।
अच्छे बुरे या धार्मिक सभी के, फल स्वयं को ही तो मिलते हैं।। (1)

मन-वचन-काय कृत कारित से, करते भी जीव जो अनुमत से।
पुण्य-पाप या धर्म-अधर्म सभी, करते हैं जीव स्वयं के ही लिए।। (2)

क्रोध-मान-माया-लोभ-काम-मोह, हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह।
दान-दया-सेवा-त्याग-परोपकार, ध्यान-अध्ययन-तप स्वयं के लिए।। (3)

ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा-परनिंदा-अपमान, मिलावट-शोषण आदि कुकाम।
समता-शांति व क्षमा-सहिष्णुता, स्वयं के फल को जीव स्वयं ही पाते।। (4)

सुकृत-दुष्कृत व आध्यात्मिक के फल, पाते है जीव स्व-भाव-व्यवहार से।
बीजानुसार ही यथा फल-फूल आते, भोजन अनुसार यथा परिणाम पाते।। (5)

नवकोटि से जीव जो कर्म बांधते, तदनुकूल जीव फल को पाते।
पुण्य से अभ्युदय तो पाप से पतन, इह-परलोक में फल ये पाते।। (6)

ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग से, समता-शांति व सहिष्णुता से।
आत्मविशुद्धि से पुण्य-पाप नष्ट कर, शुद्ध-बुद्ध व ज्ञानानंद को पाते।। (7)

अतः हर जीव को स्वयं के सुख हेतु, पाप त्यागकर करना चाहिए पुण्य।
शाश्वतिक सुख हेतु कर्म नाशकर, बनना श्रेय है सच्चिदानंदमय।। (8)

कर्म सिद्धांत का रहस्य भी यह है, मनोवैज्ञानिक व आध्यात्मिक रहस्य।
इह-परलोक आध्यात्मिक सुख के उपाय, आध्यात्मिक सुख ही 'कनक' का अंतिम लक्ष्य।। (9)

नन्दौड़, दिनांक 07.11.2015, रात्रि 7.45

**संदर्भ-**

**एवं कत्ता भोक्ता होज्जं अप्पा सगेहिं कम्मेहिं।**
**हिंडदि पारमपारं संसारं मोहसंच्छण्णो।। (69)** पं.का.

इस प्रकार अपने कर्मों का कर्त्ता-भोक्ता होता हुआ आत्मा मोहाच्छादित वर्तता हुआ अनंत संसार में परिभ्रमण करता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है-

**कर्म प्रधान विश्व करि राखा।**

**जो जस करहिं फलहि तस चाखा।।**

अमितगति आचार्य ने कहा भी है-

**स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम।**

**परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।। (30)**

पहले जो जीव पुण्य एवं पाप कर्म करता है उसका ही फल शुभ एवं अशुभ रूप से प्राप्त करता है। यदि कोई दूसरे के द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो स्वयं किया हुआ कर्म निरर्थक हो जायेगा।

**निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन।**

**विचार यन्नेवमनन्य मानसः, परो दातीति विमुञ्च शेमुषीम्।। (31)**

(सामायिक पाठ)

अपने उपार्जित कर्म छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए हे आत्मन्! तू एकाग्रचित्त हो और दूसरा देता है इस बुद्धि को छोड़।

## अज्ञानी-मोही के विपरीत भाव व व्यवहार

**(चाल : भातुकली....., छोटी-छोटी गैया.....)**

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध से, ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा व अहंकार से।
जीव न जानते सत्य-तथ्य, हिताहित विवेक से होते रिक्त।।

सत्य को असत्य माने जाने जीव, हित को अहित माने वे जीव।
मद्यपी से भी होते अधिक मोहित, अंधे से भी अधिक विवेक रहित।।

सत्ता-संपत्ति को अपना मानते, भोगोपभोगों में होते आसक्त।
फैशन-व्यसनों में होते मस्त, पर अहित में लगाते चित्त।।

गुण व गुणी की न प्रशंसा करते, अन्य की प्रशंसा से घृणा करते।
अन्य की निन्दा से प्रसन्न वे होते, अन्य के दुःख से खुश वे होते।।

अन्य की प्रगति से जलते रहते, अन्य को छोटा कर बड़ा बनते।
अन्य की निन्दा से महान् बनते, अन्य के नाश से स्व-विकास मानते।।

विघ्नसंतोषी व छिद्रान्वेषी होते, परसुखकातर व कृतघ्नी होते।
स्व-दोष व कमी को नहीं जानते/(मानते), स्व-दोष कमी को सही मानते/(जानते)।।

संकीर्ण कट्टर जो धार्मिक होते, धन-जन-मान से संयुक्त होते।
ख्याति-पूजा-लाभ में (जो) आसक्त होते, बुद्धिजीवी में उक्त कुगुण (अधिक) होते।।

सरल-सहज भोला-भाला जो होते, श्रद्धा-प्रज्ञा से जो संयुक्त होते।
स्व-परहितकारी (जो) गुणज्ञ होते, उक्त कुगुण से वे बचते रहते।।

स्व-पर सुख हेतु सुगुण ग्राह्य, स्व-पर दुःख हेतु कुगुण त्याज्य।
सुगुणों से ही मिलता है मोक्ष, 'कनक' अतएव सुगुणों में आसक्त।।

नन्दौड़, दिनांक 09.11.2015, प्रातः 8.18

# रागी द्वेषी मोही के भाव व्यवहार तथा इनसे विपरीत आध्यात्मिक जन

**-आ. कनकनन्दी**

**(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)**
रागी द्वेषी मोही कामी क्रोधी, नहीं जानते हैं सत्यासत्य।
ईर्ष्या तृष्णा व घृणा सहित, करते भाव व्यवहार अयुक्त।।
यथाहि मद्यपी नशा सहित, नहीं जानता है हित-अहित।
भाव व्यवहार करता अहितकर, तथाहि रागी द्वेषी के भाव व्यवहार।। (1)

मद्य से भी अधिक होता नशा, राग द्वेष मोह काम क्रोध में।
कुछ समय (तक) मद्य का नशा रहता, राग द्वेषादि का तो भव-भव में।।
रागी द्वेषी मोही न स्वयं को जाने, तथाहि न जानता हैं पर स्वरूप।
स्वयं को जानता है शरीरमय, राग द्वेष मोहादि को स्व-स्वभाव।। (2)

शरीर संबंधिओं को माने स्व-कुटुम्ब, सत्ता-संपत्ति को माने स्व-वैभव।
जन्म जरा मरण को (माने) स्व-अवस्था, सांसारिक सुख-दुःख को आत्म दशा।।
इन्द्रिय विषयों को ही मानता सत्य, इन्द्रिय सुख को ही मानता सुख।

तन-मन-इन्द्रियमय (ही) माने स्वयं को, सच्चिदानंदमय न माने स्वयं को।। (3)

उक्त विषयों में ही रूचि रखता, उसके लिए ही वह ज्ञान करता।
उसका संवर्द्धन संरक्षण करता, अहंकार व प्रशंसा भी करता।।
आध्यात्मिक जन इससे भिन्न होता, स्वयं को सच्चिदानंद मानता।
स्वरूप का श्रद्धान व ज्ञान करता, स्व-स्वरूप प्राप्ति हेतु यत्न करता।। (4)

स्व-स्वरूप चिंतन व ध्यान करता, स्व-स्वरूप की चर्चा प्रशंसा करता।
तप त्याग द्वारा मोक्ष प्राप्त करता 'कनक' को स्वरूप ही श्रेय लगता।।
दोनों के भाव व्यवहार भिन्न होते, परस्पर विरोधी भाव-व्यवहार होते।
मोही आध्यात्मिक जन को दोषी मानता, आध्यात्मिक जन साम्य भाव रखता।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 21.12.2015, रात्रि 12.27

## संदर्भ-

**मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।**
**मत्तः पुमान् पदार्थनां यथा मदनकोद्रवैः।।7।।**

''धातुनाम् अनेक अर्थत्वात्'' अर्थात् धातुओं के अनेक अर्थ होने के कारण यहाँ लभ धातु का अर्थ ज्ञान है। जब ज्ञान मोहनीय कर्म के विपाक से आविर्भूत हो जाता है तब वह ज्ञान वस्तु स्वरूप को यथार्थ प्रकाशन करने में असमर्थ हो जाता है। शुद्ध स्वरूप से ज्ञान कथंचित् आत्मा से अभिन्न है और वस्तु स्वरूप को यथार्थ से जानने के लिए पूर्ण समर्थ है परन्तु कर्म परवशता के कारण ज्ञान में/आत्मा में विकार उत्पन्न हो जाता है। कहा भी है-जिस प्रकार मल से आबद्ध मणि एक प्रकार का नहीं होता है, एक प्रकार का प्रकाश नहीं देता है उसी प्रकार कर्म से आबद्ध आत्मा भी एक प्रकार का नहीं होता है और एक प्रकार का नहीं जानता है।

**प्रश्न**-अमूर्तिक आत्मा किस प्रकार मूर्तिक कर्म से आविर्भूत होता है, आबद्ध होता है?

**उत्तर**-शुद्ध आत्मा अमूर्तिक होते हुए भी संसारी जीव अभी अमूर्तिक नहीं है कर्म से आबद्ध संसारी जीव व्यवहारनय की अपेक्षा मूर्तिक है।

नशे को पैदा करने वाले कोद्रव-कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है, ऐसा पुरुष घट, पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता, उसी प्रकार

कर्म बद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञान गुण यद्यपि अमूर्त है, फिर भी मूर्तिमान कोद्रवादि धान्यों से मिलकर वह बिगड़ जाता है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसके गुण भी दब सकते हैं।

**समीक्षा**-सत्य से विपरीत मान्यता श्रद्धा/प्रतीति विश्वास रूप परिणाम व भावों को मोह/मिथ्यात्व कहते हैं। सत्य का पूर्ण साक्षात्कार सर्वज्ञ वीतरागी देव करते हैं। सर्वज्ञ भगवान् ने दिव्य ध्वनि मूलक उस परम सत्य का प्रमाण, नय, निक्षेपों के द्वारा प्रतिपादन किया है, उनके द्वारा प्रतिपादित सत्य अर्थात् जो उनके द्वारा कहे हुए द्रव्य, तत्त्व पदार्थों में विश्वास नहीं करता, श्रद्धा नहीं करता वह मिथ्यादृष्टि है क्योंकि उसकी श्रद्धारूप दृष्टि विपरीत होने के कारण वह पदार्थ को भी विपरीत रूप श्रद्धान करता है। सिद्धांत चक्रवर्ती नेमीचन्द्र आचार्य गोम्मट्टसार में कहते हैं-

**मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं च ण सधहदि।**
**सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइः।।18।।**

मिथ्यादृष्टि जीव 'उपदिष्ट' अर्थात् अर्हंत आदि के द्वारा कहे गये, 'प्रवचन' अर्थात् आप्त आगम और पदार्थ ये तीन, इनका श्रद्धान नहीं करता है। प्रवचन अर्थात् जिसका वचन प्रकृष्ट है ऐसा आप्त, प्रकृष्ट का वचन प्रवचन अर्थात् परमागम। प्रकृष्ट रूप से जो कहा जाता है वह प्रवचन अर्थात् पदार्थ। इन निरूक्तियों से प्रवचन शब्द से आप्त, आगम और पदार्थ तीनों कहे जाते है तथा वह मिथ्यादृष्टि असद्भाव अर्थात् मिथ्या रूप प्रवचन यानी आप्त आगम पदार्थ का 'उपदिष्ट' अर्थात् आप्ताभासों के द्वारा कथित अथवा अकथित का भी श्रद्धान करता है।

**मदि सुदणाण बलेण दु सच्छंदं बोल्लेदे जिणुवदिट्ठं।**
**जो सो होदि कुदिट्ठी ण होदि जिण मग्ग लग्गरवो।।2।।** (रयणसार)

जो मतिज्ञान श्रुतज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से प्राप्त हुए मतिज्ञान-श्रुतज्ञान के कारण उद्धत होकर स्वयं के मनमाने ज्ञान के द्वारा अपने मत अर्थात् पक्ष को लेकर स्वच्छंद होकर कपोल कल्पित मत का प्रतिपादन करते हैं, जिनवाणी को नहीं मानते हैं वे मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जिनधर्म से बाह्य हैं। यदि जिनागम को दिखाने पर यथार्थ वस्तु का श्रद्धान करने लगता है और पूर्व कल्पित मत-पक्ष का त्याग करता है तब वह सम्यग्दृष्टि बन जाता है अन्यथा मिथ्यादृष्टि रहता है।

**मिच्छत्तं वेदंतो जीवो विवरीय दंसणो होदि।**

**ण य धम्मं रोचेदि हु महुरं खु रसं जहा जरिदो।।17।।**

उदय में आये मिथ्यात्व का वेदन अर्थात् अनुभवन करने वाला जीव विपरीत दर्शन अर्थात् अतत्त्व श्रद्धा से युक्त होता है। वह न केवल अतत्त्व की ही श्रद्धा करता है अपितु अनेकान्तात्मक, धर्म, वस्तु स्वभाव, मोक्ष के कारणभूत रत्नत्रयात्मक धर्म को भी पसंद नहीं करता।

**दृष्टांत**–पित्त ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति मीठे-दूध रसादि को पसंद नहीं करता, उसी तरह मिथ्यादृष्टि को धर्म नहीं रुचता है।

**इंदिय विसय सुहादिसु मूढमदी रमदि न लहदि तत्त्वं।**

**बहुदुक्खमिदि ण चिंतदि सो चेव हवदि बहिरप्पा।।29।।** (रयणसार)

जो मूढ़मति इन्द्रिय जनित सुख में रमण करता हुआ उसको सुख मानता है, बहु दुःखप्रद नहीं मानता है, वह आत्म तत्त्व को प्राप्त नहीं कर सकता है, वह बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि है।

पूर्व संचित मिथ्यात्व कर्म के उदय से जो स्वयंमेव विपरीत भाव होता है उसे निसर्ग व अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं, जो कुगुरु के उपदेश से विपरीत भाव होते है उसे अधिगमज व गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं। मिथ्यात्व के कारण जीव अवस्तु में वस्तुभाव, अधर्म में धर्मभाव, कुगुरु में गुरुभाव, कुशास्त्र में सुशास्त्र भाव को धारण करता है। बहिरात्मा केवल शरीर पोषण करता है, अतीन्द्रिय आत्मोत्थ सुख से बहिर्मुख होकर विषय सुख में ही लीन रहता है। बाह्य-भौतिक हानि वृद्धि में अपनी हानि-वृद्धि मानकर सुखी-दुःखी होता है। सामान्य से मिथ्यात्व एक प्रकार होते हुए भी विशेष अपेक्षा अर्थात् द्रव्य-भाव से दो प्रकार, एकांत, विपरीत, संशय, विनय, अज्ञान की अपेक्षा पाँच प्रकार भी होता है। इसमें सांख्य चार्वाक मत मिलाने से 7 प्रकार का मिथ्यात्व होता है। विशेष रूप से क्रियावादियों के 180, अक्रियावादियों के 84, अज्ञानवादी के 67 और वैयनिकवादियों के 32 इस प्रकार मिथ्यावादियों के 363 भेद होते हैं।

## मोही पर को अपनाता

**वपुर्गृहं धनं दाराःपुत्रा मित्राणि शत्रवः।**

**सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते।।8।।**

स्व-पर विवेकहीन मूढ़ मोही जीव शरीर, घर, धन, स्त्री, पुत्र, मित्र यहाँ तक कि शत्रु को भी जो कि सर्वथा स्वयं से भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। सर्वथा सर्व प्रकार से अर्थात् द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप से जो स्व-स्वरूप से अन्य है, भिन्न है ऐसे परद्रव्य को भी दृढ़तर मोह से आविष्ट जीव अपना मान लेता है। शरीर जो कि अचेतन परमाणुओं से (रक्त, माँस, हड्डी, चर्म आदि) निर्मित होने के कारण अचेतन स्वरूप है उसे भी अपना मान लेता है। इसी प्रकार घर, धन, स्पष्ट रूप से भौतिक जड़ वस्तु से निर्मित है उसे भी अपना मान लेता है। भार्या, पुत्र, मित्र तथा शत्रु जो कि शारीरिक दृष्टि से तथा आत्मिक दृष्टि से भी भिन्न है उसे भी अपना मान लेता है। यहाँ पर शरीर आदि को हितकारी मानता है और शत्रु आदि को मेरा अहितकारी मानकर उसमें भी मेरा शत्रु है ऐसा अपनापन रखता है।

**समीक्षा**-शुद्ध निश्चयनय से स्वशुद्ध द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव ही स्व-चतुष्ठय है और इससे भिन्न समस्त चेतन-अचेतन द्रव्य, द्रव्य-क्षेत्र, काल भाव से भिन्न है, पर है तथापि मोही जीव मोह के कारण पर आत्म स्वरूप को भी स्व-स्वरूप मान लेता है, जिससे उसकी स्वार्थ सिद्धि होती हो, इन्द्रिय जनित सुख मिलता हो उसको अपना हितकारी मानकर अपना मानता है और राग करता है तथा जिससे स्वार्थ सिद्धि नहीं होती है, इन्द्रिय जनित सुख नहीं मिलता हो उसको अपकारी मानकर उससे द्वेष करता है। एक के प्रति रागात्मक संबंध है तो दूसरे के प्रति द्वेषात्मक संबंध है। मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीय तथा चारित्र मोहनीय कर्म के कारण श्रद्धा रूप से तथा आचरण रूप से शरीर आदि पर वस्तु में मोह करता है परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव श्रद्धा रूप से परद्रव्य को पर मानते हुए भी जब तक चारित्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब तक वह पर द्रव्य को व्यवहार रूप से, आचरण रूप से अपना मानता है।

# निर्दोष सर्वज्ञ भगवान् ही जानते हैं परम सत्य

## (सर्वज्ञ को छोड़कर अन्य वैज्ञानिक-दार्शनिक भी नहीं जानते हैं परम सत्य)

**(चाल : तुम दिल की....., छोटी-छोटी गैया.....)**

परम वैज्ञानिक व दार्शनिक...होते हैं सर्वज्ञ भगवान्...
त्रिकालवर्ती समस्त ज्ञेय को...युगपत् जानते केवली भगवान्...(स्थायी)...

कोई भी वैज्ञानिक या दार्शनिक...नहीं जानते हैं परम सत्य...

सभी भी वैज्ञानिक व दार्शनिक...नहीं जानते हैं सम्पूर्ण सत्य...

अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक...आत्मा से परमात्मा तक...
वैज्ञानिक हो या दार्शनिक...नहीं जानते हैं अनंत तक...(1)...

नहीं जानते हैं वे स्व-आत्मा के...अनंत गुण-पर्यायों को...
अनंत भूत व भविष्य को...अनंत जन्म व मरणों को...

निश्चय-व्यवहार नय-निक्षेपों से...अनेकान्त व स्याद्वाद से...
नहीं जानते हैं सम्पूर्ण विश्व को...बिना यंत्र व इन्द्रियों से...(2)...

समस्त शंकाओं का समाधान भी...उनके पास न होता है...
स्व-पर-विश्व समस्याओं का...समाधान भी न होता है...

अपरिवर्तित भी न होता...उनका हर सिद्धांत भी...
खण्डित होता स्व-वचनों से...पूर्वापर स्व-वचनों से भी...(3)...

राग द्वेष मोह काम क्रोधादि से...वे नहीं होते पूर्ण मुक्त...
ईर्ष्या घृणा तृष्णा पक्षपातादि से...नहीं होते वे पूर्ण मुक्त...

पूर्ण मुक्त होते जो राग द्वेषादि से...वे होते हैं सर्वज्ञ भगवान्...
'कनकनन्दी' भी बना है श्रमण...बनने हेतु सर्वज्ञ भगवान्...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 15.12.2015, रात्रि 10.15

**(शिक्षा-ज्ञान संबंधी शोधपूर्ण कविता)**

## हर सुज्ञान की उपयोगिता

### (परस्पर उपकारी होते है ज्ञान)

**(चाल : यमुना किनारे....., दुनिया में हम आये हैं तो.....)**

जीवन में हर ज्ञान भी काम (में) आते/(है),
सदुपयोग करना यदि कोई जानते (है)।
दुरुपयोग से स्व-पर अपकार भी होता (है),
द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अनुसार संभव होता (है)।। (1)

विविध ग्रंथों में पढ़ा व अनुभव किया,
आधुनिक विज्ञान से यह मैं पाया।

अज्ञान व दुरुपयोग से कुफल भी देखा,
सुज्ञान व सदुपयोग से सुफल भी देखा।। (2)

एक ज्ञान अन्य ज्ञान हेतु बने सहयोगी,
हर ज्ञान परस्पर भी बनते हैं उपयोगी।
एक ज्ञान से अन्य ज्ञानों में होती है वृद्धि,
एक ज्ञान की कमी में अन्य ज्ञान की हानि।। (3)

छद्मस्थों के ज्ञानों में यह होना संभव,
सर्वज्ञ तो युगपत् जानते सकल ज्ञेय।
मति-श्रुतज्ञान में होता है बहुपयोगी,
मतिपूर्वक होता श्रुतज्ञान सर्वज्ञवाणी।। (4)

गणित में यथा अंकों का होता प्रयोग,
शून्य (0) व नौ (1 से 9) में होता गणित प्रयोग/(गणित ज्ञान)।
स्वर व्यंजन मात्राओं से होता भाषा प्रयोग,
वस्त्र में होता यथा ताना-बाना प्रयोग।। (5)

अनेकांत सिद्धांत भी सदा यही बताता,
स्याद्वाद्व कथन भी सदा यही कहता।
शरीर के अवयवों से इसका अनुभव भी होता,
लौकिक आध्यात्मिक में भी सही बैठता।। (6)

यंत्र उपकरणों से यह ज्ञात भी होता,
विश्व कार्य प्रणाली से भी सुज्ञान होता।
सुज्ञान हेतु हर ज्ञान सीखना विधेय,
दुरुपयोग हेतु कोई (भी) ज्ञान नहीं विधेय।। (7)

आगम में ज्ञान-ज्ञेय का होता वर्णन,
अशुभ शुभ-शुद्ध का होता वर्णन।
हेय-उपादेय का भी होता वर्णन,
पाप व पापियों का भी होता वर्णन।। (8)

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थ होता सुज्ञान,

हित प्राप्ति अहित त्याग होता सुज्ञान।
अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादान उपेक्षा फलम्,
अज्ञाननिवृत्तिहान उपादान उपेक्षा फलम्।। (9)

स्व-पर ज्ञान से ही होता है भेदविज्ञान,
मार्गणा गुणस्थानों में भी यह सभी वर्णन।
द्रव्य तत्त्व पदार्थों में यह वर्णन,
प्रमाण नय निक्षेप में यह वर्णन।। (10)

व्रत समिति अनुप्रेक्षा से होता यह ज्ञान,
सामान्य विशेष कथन से होता सुज्ञान।
जानना तो आत्म स्वभाव ज्ञान-ज्ञेय संबंध,
स्व-पर मत व तात्कालिक ज्ञान निबद्ध।। (11)

लोकज्ञता में आचार्य भी होते निष्णात,
सर्व विद्या में पारंगत होते पाठक।
ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव स्व-पर ज्ञाता,
'कनक' को भी मान्य सुज्ञान की महत्ता।। (12)

नन्दौड़, दिनांक 07.12.2015, रात्रि 11.00

# आगम ज्ञान व शुद्धात्मा भावना बिना मुक्ति नहीं

## (शुद्धात्मा भावना बिना केवल बाह्य तप-त्याग पूजादि से मुक्ति नहीं)

**(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)**

शुद्धात्मा भावना बिना व्रत तपादि, दान दया सेवा पूजा तीर्थ वंदना आदि।
न बनते मोक्ष हेतु न होता सम्यक्त्व, भले इससे मिले स्वर्ग मनुष्य सुख।। (स्थायी)

शुद्धात्मा भावना से ही मिलता सम्यक्त्व, होता है भेद विज्ञान नशे मिथ्यात्व।
अनंतानुबांधी क्रोध मान मायादि नशे, ज्ञान व चारित्र भी होते सम्यक्।।

व्रत नियम तप-त्यागादि होते सम्यक्, संवर व निर्जरा भी होते सम्यक्।
सातिशय बंध होता (है) पुण्य विशेष, सांसारिक सुख (व) मिले मोक्ष सुख।। (1)

शुद्धात्मा भावना बिना न होता सम्यक्त्व, सम्यक्त्व बिना तप-त्याग न होते सम्यक्।

दान दया सेवा पूजा तीर्थ वंदना आदि, पापानुबंधी पुण्य बंधे न मिले मुक्ति।।
घोर तप-त्याग उपसर्ग सहन आदि, मासोपवास सहित मुनिव्रत आदि।
सम्यक्त्व बिना न बनते मोक्ष (के) कारण, सम्यक्त्व बिना न होता भेद विज्ञान।। (2)
सम्यक्त्व हेतु परमागम ज्ञान चाहिए, आध्यात्म अनुभवी श्रमण गुरु चाहिए।
पंचलब्धियों का सम्यक् संयोग चाहिए, राग द्वेष मोह का उपशम आदि चाहिए।।
इसी से (होता है) आत्मा का सही श्रद्धान, जिससे होते सम्यक् व्रत (व) नियम।
स्वशुद्ध आत्मा का भी होता अनुभव ज्ञान, जिससे निश्चय से मैं हूँ परमात्मा समान।। (3)
शुद्धात्मा भावना से/(में) स्व का होता ज्ञान-ध्यान, मैं हूँ शुद्ध-बुद्ध स्वभावी आनंदघन।
राग द्वेष मोह रहित (हूँ) सच्चिदानंद, तन-मन अक्ष रहित (हूँ) ज्ञानानंद।।
इसी से आत्म विशुद्धि समता बढ़ती, राग द्वेष मोह की भी शक्ति घटती।
ईर्ष्या तृष्णा घृणा की शक्ति नशती, ख्याति पूजा लाभ की इच्छा न होती।। (4)
इसी से ही आत्मा की प्रगति होती, संवर निर्जरा सहित मुक्ति मिलती।
जिससे मिलता आत्मिक अनंत सुख, 'कनकनंदी' का लक्ष्य आत्मिक सुख।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 06.12.2015, प्रातः 6.10

## सन्दर्भ-

**छदुमत्थविहिदवत्थुसु वदणियमज्झयणझाणदाणरदो।**
**ण लहदि अपुणब्भावं भावं सादप्पगं लहदि।। (256)** प्र.सार

(छदुमत्थविहिदवत्थुसु) अल्प ज्ञानियों के द्वारा कल्पित पात्रभूत वस्तु अर्थात् देवगुरु शास्त्र धर्मादि पदार्थों में (वदणियमज्झयणझाणदाणरदो) तथा व्रत, नियम, पठन, पाठन, ध्यान दान में रत पुरुष (अपुणब्भावं) अपुनर्भव अर्थात् मोक्ष को (ण लहदि) प्राप्त नहीं कर सकता है, किन्तु (सादप्पगंभावं) सातामयी अवस्था को अर्थात् सातावेदनीय के उदय से देव या मनुष्य पर्याय को (लहदि) प्राप्त करता है। जो कोई निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्ग को नहीं जानते हैं, केवल पुण्यकर्म को ही मुक्ति का कारण कहते हैं उनको यहाँ छद्मस्थ या अल्पज्ञानी कहना चाहिए न कि गणधरदेव आदि ऋषिगण को। जो शुद्धात्मा के यथार्थ उपदेश को नहीं दे सकते इन अल्पज्ञानियों अर्थात् मिथ्याज्ञानियों के द्वारा दीक्षितों को छद्मस्थविहित वस्तु कहते हैं। ऐसे अयथार्थ

कल्पित पात्रों के संबंध से जो व्रत, नियम, पठन-पाठन, दान आदि कार्य जो पुरुष करता है वह कार्य शुद्धात्मा के अनुकूल नहीं होता है इसलिए मोक्ष का कारण नहीं होता। उससे वह सुदेव या मनुष्यपना प्राप्त करता है।

सर्वज्ञ कथित वस्तुओं से युक्त शुभोपयोग का फल पुण्य संचयपूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है। वह फल कारण की विपरीतता होने से विपरीत ही होता है। वहाँ छद्मस्थ कथित वस्तुएँ विपरीत कारण हैं, छद्मस्थ कथित उपदेश के अनुसार व्रत नियम अध्ययनध्यान दानरतरूप से युक्त शुभोपयोग का फल मोक्षशून्य केवल अधर्म (अधम) पुण्य की प्राप्ति है, वह फल की विपरीतता है। वह फल सुदेव मनुष्यत्व है। (तत्वप्रदीपिका)

**समीक्षा**–इस गाथा में आचार्य कुंदकुंद देव ने मिथ्याशास्त्र के प्रतिपादक और उस मिथ्याशास्त्र के अनुसार आचरण करने वालों के लिए चेतावनी दी है कि ऐसे व्यक्ति कभी भी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। भले ही मिथ्या आदि तप के कारण पापानुबंधी पुण्य का बंध करके कुछ सांसारिक इन्द्रिय जनित सुख प्राप्त कर सकते हैं। जो घातिकर्म को नष्ट कर केवलज्ञान आदि अनंत चतुष्टय को प्राप्त करते है वे ही सर्वज्ञ, धर्मोपदेशक बन सकते है अन्य कोई नहीं, क्योंकि सत्य अनंत होने के कारण जब तक अनंत ज्ञान नहीं होगा तब तक संपूर्ण सत्य का परिज्ञान नहीं हो सकता और जब तक संपूर्ण सत्य का परिज्ञान नहीं होगा तब तक संपूर्ण सत्य का प्रतिपादन भी नहीं कर सकता है और ऐसे छद्मस्थ व्यक्तियों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों में भी अनेक दोष होंगे और जो स्वयं निर्दोषी होगा उसके वचन भी निर्दोष होंगे।

**मदिसुदणाणबलेणदु सच्छंदं बोल्लइजिणुत्तमिदि।**
**जो सो होइ कुद्दिट्ठि ण होइ जिणमग्गरओ।। (3)**

अपने मति श्रुतज्ञान के बल से अपने मनमानी स्वच्छंदता पूर्वक यद्वातद्वा कथन करता है ऐसा ही जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है सो ही मैं कह रहा हूँ। जो इस प्रकार कहकर अपनी स्वच्छंदता का पोषण करता है निश्चय से वह जिनमार्ग में रत नहीं अथवा जिनेन्द्र कथित मार्ग से वह बहुत दूर है मिथ्यादृष्टि होता है।

उपरोक्त समस्त सिद्धांत से स्पष्ट हो जाता है कि सर्वज्ञ ही सत्य दृष्टा, सत्य वक्ता है उनका अनुकरण करने वाले ही मोक्षमार्गी हैं। इससे विपरीत आचरण करने वाले सब संसारमार्गी हैं। तिल्लोयपण्णति, धवला, जयधवला आदि प्राचीन ग्रंथ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि संपूर्ण प्राचीन आचार्यों ने सर्वज्ञ का ही अनुकरण किया

है, स्वेच्छा से स्वैराचारी होकर मनमाना कुछ भी न कहा न लिखा। तिल्लोयपण्णति के कर्त्ता यतिवृषभाचार्य ने कुछ-कुछ स्थल पर दो-तीन मत को रखा है परन्तु यह निर्णय नहीं दिया कि कौनसा विषय सही है। इस प्रकार वीरसेन आचार्य ने धवला-जयधवला में अनेक स्थल में अनेक मतों को रखा है और उसकी समीक्षा भी की है। परन्तु अनेक स्थल में बिना समीक्षा किये तटस्थ रहे हैं। तब उस संबंध में प्रश्न करने पर वे उत्तर देते हैं कि ''एलाआयरिय सिसस्स जिव्हा न हिलज्जई गोयम पुच्छ'' अर्थात् एलाचार्य के शिष्य वीरसेन की जिह्वा नहीं हिलेगी गौतम गणधर से प्रश्न करो। इसका अर्थ यह है कि जिसका पूर्ण परिज्ञान आगम के अनुसार हमें नहीं है तो उसका उत्तर हमें नहीं देना चाहिए। इससे सर्वज्ञ की आज्ञा की अवहेलना होती है, सत्य का अपलाप होता है। जिससे सम्यक्त्व का ही घात हो जाता है। स्वच्छंद आचरण के कारण ही विभिन्न मिथ्यामत एवं उपमतों का निर्माण हुआ है।

तीन लोक में तीन काल में सर्वज्ञ उपदिष्ट अनेकांतात्मक जैन शासन ही प्रवर्तमान रहता है, भले भाव रूप से अन्य मिथ्यामत का सद्भाव रहता है। परन्तु वर्तमान हुण्डावसर्पिणी काल के कारण भरत एवं ऐरावत क्षेत्र में विभिन्न द्रव्य मिथ्यामतों का भी प्रचार-प्रसार हो रहा है। जैन मत को छोड़कर अन्य बाह्य मतों में तो अनेक भेद-प्रभेद मिथ्यात्वोदय के कारण है ही परन्तु स्वयं को जैन मानने वाले भी जिनवाणी को स्वमतानुसार परिवर्तित कर निजवाणी बना रहे हैं। जिसके कारण जिनमत में भी अनेक मतान्तर बन रहे हैं। कुछ व्यक्ति स्वमिथ्यामत को सिद्ध करने के लिए जिनमत को परिवर्तित करके निजमतानुसार बना देते हैं, ऐसे व्यक्ति को ही जैनाभास कहते हैं। ऐसे व्यक्ति स्वात्महिंसा के साथ-साथ दूसरों की भी आत्महत्या करवाते हैं, क्योंकि धर्म से च्युत होना ही बड़ी हिंसा है। ऐसे व्यक्ति कितने भी व्रत पालन करे, अध्ययन करे, ध्यान करे, वे कभी भी मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकते हैं। परन्तु संसार में ही परिभ्रमण करते रहेंगे। कुंदकुंद देव ने प्रवचनसार में अन्यत्र कहा है-

**आगमहीणो समणो णेवप्पाणं परं वियाणादि।**

**अविजाणंतो अट्ठे खवेदि कम्माणि किध भिक्खु।। (233)**

आगमहीन श्रमण आत्मा को और पर को नहीं जानता, पदार्थों को नहीं जानता हुआ भिक्षु कर्मों को किस प्रकार क्षय करें।

**ण हि आगमेण सिज्झदि सद्दहणं जदि वि णत्थि अत्थेसु।**

**सद्दहमाणो अत्थे असंजदो वा ण णिव्वादि।। (237)**

आगम से यदि पदार्थों का श्रद्धान न हो तो सिद्धि नहीं होती, पदार्थों का श्रद्धान करने वाला भी यदि असंयत हो तो निर्वाण को प्राप्त नहीं होता।

**अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।**

**सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं।।** अष्टपाहुड पृ. 106, ।

जिसका अर्थ अरहंत भगवान् के द्वारा प्रतिपादित है, गणधर देवों ने जिसका अच्छी तरह गुम्फन किया है तथा शास्त्र के अर्थ का खोजना ही जिसका प्रयोजन है उसे सूत्र कहते हैं। ऐसे सूत्र के द्वारा सम्यग्दृष्टि दिगम्बर साधु अपने परमार्थ को साधते हैं।

**सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आयरियपरम्परेण मग्गेण।**

**णाऊण दुविहसुत्तं वट्टइ सिवमग्ग जो भव्वो।। (2)**

आगम में जिसका अच्छी तरह प्रतिपादन किया गया है ऐसे द्विविध सूत्र द्रव्यश्रुत और भावश्रुत को जो आचार्यों की परंपरा से युक्त मार्ग के द्वारा जानकर मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है वह भव्य है।

**सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो।**

**खेडेवि ण कायव्वं पाणिपत्तं सचेलस्स।। (7)**

**जो आगम के पद और अर्थ से विनिष्ट है अर्थात् द्रव्यश्रुत की श्रद्धा से रहित है उसे मिथ्यादृष्टि जानना चाहिए। वस्त्रधारी गृहस्थ को क्रीड़ा में भी पाणि पात्र से आहार नहीं करना चाहिए और न साधु समझकर पाणि पात्र आहार देना चाहिए।**

**उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गुरुयभारो य।**

**जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छेदि होदि मिच्छत्तं।। (9)**

**जो मुनि सिंह के समान निर्भय रहकर उत्कृष्ट चरित्र धारण करते हैं, अनेक प्रकार के परिकर्म व्रत उपवास आदि करते हैं तथा आचार्य आदि पद का गुरुत्तर भार संभालते हैं परन्तु स्वच्छंद प्रवृत्ति करते हैं, आगम की आज्ञा का उल्लंघन करके मनचाही प्रवृत्ति करते हैं वे पाप को प्राप्त होते है एवं मिथ्यादृष्टि कहलाते हैं।**

परन्तु जो व्यक्ति आगम को जानता है, मानता है एवं आचरण करता है वही

व्यक्ति सम्यग्दृष्टि है, मुमुक्षु है श्रमण है एवं मोक्ष का पात्र है, मोक्ष प्राप्त कर सकता है। कुंदकुंद देव ने कहा है-

विचित्र गुण पर्यायों सहित समस्त पदार्थ आगमसिद्ध हैं उन्हें भी वे श्रमण आगम द्वारा वास्तव में देखकर जानते हैं।

साधु आगमचक्षु है, सर्वप्राणी इन्द्रिय चक्षु वाले है, देव अवधि चक्षु वाले है और सिद्ध सर्वतः चक्षु है।

श्रमण एकाग्रता को प्राप्त होता है। एकाग्रता पदार्थों के निश्चयवान के होती है, पदार्थों का निश्चय आगम के द्वारा होता है इसलिए आगमाभ्यास मुख्य है।

**सुत्तं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।**

**सूई जहा असुत्ता णासदि सुत्ते सहा णोवि।। (3)** अष्टपाहुड़

जो मनुष्य यथार्थ में सर्वज्ञ देव के शास्त्र को जानता है वह संसार का नाश करता है। जिस प्रकार सूत्र अथवा डोरा से रहित सुई नष्ट हो जाती है, गुम हो जाती है, उसी प्रकार सूत्र अर्थात् शास्त्र से रहित मनुष्य भी नष्ट हो जाता है-चतुर्गति संसार में गुम हो जाता है।

**पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।**

**सच्चेयेणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि।। (4)**

**जो पुरुष ससूत्र है जिनागम से सहित है वह संसार में पड़कर भी नष्ट नहीं होता है शीघ्र मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। वह स्वयं अप्रसिद्ध होने पर भी आत्मानुभव के प्रत्यक्ष से उस संसार को नष्ट कर देता है।**

**जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो।**

**तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं।। (6)**

जिनेन्द्र भगवान् ने जो सूत्र कहा है उसे व्यवहार और निश्चय रूप जानो। उसे जानकर योगी आत्मसुख को प्राप्त होते हैं तथा पापपुंज को नष्ट करते हैं।

**उपर्युक्त संपूर्ण उद्धरण से सिद्ध होता है कि सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित एवं पूर्वाचार्यों की परंपरा से आगत सिद्धांत व्रत, नियम, विनयाचार, समाचार विधि, नमोस्तु, प्रतिनमोस्तु, तप, त्याग आदि ही मोक्षमार्ग के लिए ग्रहण करने योग्य हैं। परन्तु इससे विपरीत छद्मस्थ द्वारा कपोल कल्पित स्वमत, परंपरा और व्रत आदि मोक्ष आदि के लिए कारभूत नहीं है इसलिए त्यजनीय**

**है। इसलिए मुमुक्षु को पूर्वाचार्यों द्वारा प्रतिपादित व्रतों को स्वीकार करना चाहिए अन्य के द्वारा प्रतिपादित नहीं।**

## पूजा का स्वरूप व फल

**(चाल : यमुना किनारे.....)**

पूज्य-पुरुषों की पूजा सदा ही करो! पूज्य गुण स्मरण व कीर्तन करो।
यथायोग्य गुण ग्रहण करो! सातिशय पुण्य से स्वर्ग-मोक्ष को वरो।। (1)

देव-शास्त्र-गुरु हैं पूज्य हमारे, वीतरागी देव बनना लक्ष्य हमारे।
लक्ष्य प्रतिपादक है शास्त्र हमारे, लक्ष्य के साधक हैं गुरु हमारे।। (2)

तन-मन-वचन से पूजा विधेय, कृत-कारित-अनुमत से यह विधेय।
ख्याति-पूजा-लाभ परे पूजा विधेय, श्रद्धा-भक्ति-शक्ति से यह विधेय।। (3)

पूजा से परिणाम को निर्मल/(पावन) करो, सातिशय पुण्य बांधों व पाप विनाशों।
संकट-संक्लेश-संताप विनाश करो! स्वर्ग-मोक्ष सुख को पाया ही करो।। (4)

भाव सहित पूजा करते है श्रावक, श्रमण होता मुख्यतः भाव पूजक।
पूजा से पूज्य बनना है लक्ष्य सभी का, आत्मोपलब्धि करना है लक्ष्य 'कनक' का।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 23.12.2015, रात्रि 8.37

## शुभ व शुद्ध भाव के अचिंत्य फल

**(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा....., भातुकली.....)**

शुद्ध लक्ष्य रखकर जो शुभ करते, अचिंत्य वैभव को अवश्य (ही) पाते।
सांसारिक सुख सह मोक्ष (सुख) पाते, शुद्ध-बुद्ध बन आत्मसुख पाते।। (ध्रुव)

यथा वट-बीज विशाल वृक्ष बनता, बीज से वृक्ष अरबों गुणा बढ़ता।
शाख-प्रशाखाओं से भी युक्त बनता, पत्र-फूल-फल से सहित होता।।

पशु-पक्षी कीट-पतंग (भी) आश्रय लेते, छाया में श्रांत-क्लांत विश्राम लेते।
प्रदूषणों को भी वह शोषण करता, खरबों बीजों को भी उत्पन्न करता।। (1)

सुयोग्य क्षेत्रादि से यथा बीज वृक्ष बनता, तथा शुभ-शुद्ध से वैभव मिलता।
शुभ से पुण्य कर्म का संचय भी होता, जिससे सांसारिक वैभव मिलता।।

दया दान सेवा जो परोपकार करते, ख्याति पूजा लाभ बिन शुभ (कर्म) करते।
ध्यान-अध्ययन-तप-त्याग करते, सांसारिक सुख (व) मोक्ष सुख (भी) पाते।। (2)

प्रशस्त भाव से होता शुभ के भाव, राग द्वेष मोह का मंद प्रभाव।
ईर्ष्या तृष्णा घृणादि भी होते है मंद, प्रशम-संवेग-आस्तिक्य होते भाव।।

आध्यात्मिक उन्नति का होता है भाव, आत्म विाशुद्धि का भी होता है भाव।
उदार सहिष्णु क्षमादि भाव, लक्ष्य रहता (है) मिले शुद्ध स्वभाव।। (3)

ऐसे जो भाव शुभ कर्म करते, राजा-महाराजा के (वे) पाते वैभव।
इन्द्र चक्रवर्ती के भी वैभव पाते, सातिशय पुण्य से तीर्थंकर (भी) बनते।।

शुद्ध प्राप्ति हेतु जो बनते श्रमण, सत्ता-संपत्ति त्यागे करे जो ध्यान।
समता शांति आत्म विशुद्धि से, कर्म क्षय से पाते वे आत्म-वैभव।। (4)

मोक्ष में मिलते है अनंत वैभव, अनंत ज्ञानदर्शन सुखवीर्य।
अतः सदा शुभ शुद्ध (ही) करणीय, 'कनक' का लक्ष्य है आत्म वैभव।। (5)

नन्दौड़, दिनांक 03.12.2015, प्रातः 7.40

## सन्दर्भ-

**एसा पसत्थभूदा समणाणं वा पुणो घरत्थाणं।**
**चरिया परेत्ति भणिदा ताएव परं लहदि सोक्खं।। (254)** प्र.सा.

(समणाणं) साधुओं को (ऐसा) यह प्रत्यक्ष (पसत्थभूदाचरिया) धर्मानुरागरूपचर्या या क्रिया होती है (वा पुणो घरत्थाणं) तथा गृहस्थों की यह क्रिया (परेत्ति भणिदा) उत्कृष्ट कही गई है (ता एव) ऐसी ही चर्या से गृहस्थ (परं सोक्खं) परंपरा से उत्कृष्ट मोक्षसुख (लहदि) प्राप्त करता है।

तपोधन दूसरे साधुओं की वैयावृत्य करते हुए अपने शरीर के द्वारा जो कुछ भी वैयावृत्य करते हैं वह पापारंभ व हिंसा से रहित होती हैं तथा वचनों के द्वारा धर्मोपदेश करते हैं। शेष औषधि अन्नपान आदि की सेवा गृहस्थों के अधीन है इसलिए वैयावृत्य गृहस्थों का मुख्य धर्म है, किन्तु साधुओं का गौण है। दूसरा कारण यह है कि विकार रहित चैतन्य चमत्कार भावना के विरोधी तथा इन्द्रिय विषय और कषायों के निमित्त से पैदा होने वाले आर्त्त और रौद्रध्यान में परिणमने वाले गृहस्थों को आत्माधीन निश्चय धर्म के पालने का अवकाश नहीं है। यदि वे गृहस्थ वैयावृत्यादि रूप शुभोपयोग

धर्म से वर्तन करे तो खोटे ध्यान से बचते है तथा साधुओं की संगति से गृहस्थों को निश्चय तथा व्यवहार मोक्षमार्ग के उपदेश का लाभ हो जाता है, इससे ही वे गृहस्थ परंपरा से निर्वाण को प्राप्त करते हैं ऐसा गाथा का अभिप्राय है।

इस प्रकार शुद्धात्मानुरागयुक्त प्रशस्त चर्यारूप शुभोपयोग वर्णित किया गया है। वह शुभोपयोग, शुद्धात्मा की प्रकाशक सर्वविरति को प्राप्त श्रमणों के कषायकण के सद्भाव के कारण प्रवर्तित होता हुआ गौण होता है क्योंकि उस शुद्धोपयोग का शुद्धात्मपरिणति से विरुद्ध राग के साथ संबंध है और वह शुभोपयोग गृहस्थों के तो सर्वविरति के न होने से शुद्धात्म प्रकाशन के अभाव के कारण कषाय के सद्भाव में प्रवर्तमान होता हुआ भी मुख्य है क्योंकि जैसे ईंधन को स्फटिक के संपर्क से सूर्य के तेज का अनुभव होता है (और इसलिए वह क्रमशः जल उठता है) उसी प्रकार- गृहस्थ को राग के संयोग से शुद्धात्मा का अनुभव होता है, और (इसलिए वह शुभोपयोग) क्रमशः परम निर्वाण सौख्य का कारण होता है।

**समीक्षा**-इस गाथा में कुंदकुंद देव ने कहा है कि भले गृहस्थ एवं श्रमण दोनों शुभोपयोग में रहते है तथापि शुभोपयोग क्रियाओं की मुख्यता श्रावकों की रहती है। शुभोपयोग चतुर्थ गुणस्थान से लेकर श्रेणी आरोहण से पहले तक मुख्यता से रहता है। तथापि सप्तम गुणस्थान में अधिक शुभोपयोग रहता है। परन्तु शुभोपयोग की क्रियाएँ 5वें गुणस्थान (श्रावक) में अधिक होती है। भले पंचम गुणस्थान में सम्यग्दर्शन और एक देश चारित्र भी है तथापि चरित्र मोहनीय कर्म के तीव्र उदय से वह सर्व विरति को प्राप्त नहीं हो पाता है। जिसके कारण गृह में रहकर असि, मसि, कृषि, गृहादि कार्य एवं विषय भोग भी करता है। जिससे वह विशेष पापास्रव करता है उस पाप को धोने के लिए वैयावृत्ति आदि विशेष रूप में करता है। कहा भी है-

**त्याज्यानजस्त्रं विषयान् पश्यतोऽपि जिनाज्ञया।**
**मोहात्त्यक्तुमशक्तस्य गृहिधर्मोऽनुमन्यते।।** पृ. 46 अ. 2 सा. धर्मा.

जिसके मिथ्यात्व कर्म का नाश हो गया है और सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई है उस सम्यग्दर्शन के प्रभाव से जिसको हेयोपादेय का ज्ञान हो गया है, जिससे वह सम्यग्दृष्टि भगवान् जिनेन्द्र देव की आज्ञा से सांसारिक पंचेन्द्रिय विषयों को निरंतर हेय समझता है, दुःख का कारण मानता है, मिथ्यादृष्टि के समान सांसारिक विषयभोगों में तल्लीन नहीं होता है तथा प्रत्याख्यानावरण लक्षण चारित्र मोहनीय कर्म के उदय से

उसको छोड़ने में असमर्थ है, ऐसे भव्य जीवों को आचार्यों ने गृहस्थ धर्म पालन का उपदेश दिया है।

**विषयविषमाशनोत्थितमोहज्वरजनिततीव्रतृष्णस्य।**

**निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान्।। (17)** पृ. 19 आत्मानु.

विषयरूप विषम भोजन से उत्पन्न हुए मोह रूप ज्वर के निमित्त से जो तीव्र तृष्णा (विषयाकांक्षा और प्यास) से सहित है तथा जिसकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण हो रही है ऐसे तेरे लिए प्रायः पेय (पीने योग्य सुपाच्य फलों का रस आदि तथा अणुव्रत आदि) की चिकित्सा अधिक श्रेष्ठ होगी।

**गृहकर्मणाणपि निचितं कर्म विमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।**

**अतिथीनां पूतिपूजा रूधिरमलं धावते वारि।। (24)** पृ. 204 रत्न.श्रा.

निश्चय से जिस प्रकार वारि-जल खून को धो देता है उसी प्रकार गृह रहित निर्ग्रंथ मुनियों के लिए दिया हुआ दान गृहस्थी संबंधी कार्यों से उपार्जित अथवा सुदृढ़ भी कर्म को नष्ट कर देता है।

जिन्होंने अंतरंग और बहिरंग घर का त्याग कर दिया है तथा सब तिथियाँ जिन्हें एक समान हैं, किसी खास तिथि से राग-द्वेष नहीं है ऐसे मुनियों के लिए जो दान दिया जाता है वह सावद्य व्यापार-सपाप कार्यों से संचित बहुत भारी कर्म को भी उसी तरह नष्ट कर देता है जिस तरह कि जल मलिन रूधिर को धो देता है, नष्ट कर देता है।

जो गृहस्थ होकर श्रावकोचित दान नहीं करता उसके लिए कहा ही है ''दाणं पूया मुक्खं सावया धम्मो ण सावय तेण विणा।'' योगेन्द्र देव ने परमात्म प्रकाश में कहा भी है-

**दाणु ण दिण्णउ मुणिवरहँ ण वि पूज्जिउ जिण णाहु।**

**पंच ण वंदिय परम गुरु किमु होसइ सिव लाहु।। (168)** अ.2 पृ. 280

आहार, औषध, शास्त्र और अभयदान-ये चार प्रकार से दान भक्तिपूर्वक पात्रों को नहीं दिये अर्थात् निश्चय व्यवहार रत्नत्रय के आराधक जो यति आदि को चार प्रकार का दान भक्ति कर नहीं दिया, इंद्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र आदि कर पूज्य केवलज्ञानादि अनंतगुणों कर पूर्ण जिननाथ की पूजा नहीं की, जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल से पूजा नहीं की और तीन लोक कर वंदने योग्य ऐसे अरहंत सिद्ध आचार्य,

उपाध्याय, साधु इन पंच परमेष्टियों की आराधना नहीं की। सो हे जीव! इन कार्यों के बिना तुझे शिव का लाभ कैसे होगा? क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति के ये ही उपाय है। जिनपूजा, पंचपरमेष्ठी की वंदना और चार संघ को चार प्रकार दान इन बिना मुक्ति नहीं हो सकती। कुंदकुंद देव ने बारस अणुपेक्खा में कहा है-

**पुत्त कलत्तणिमित्तं, अत्थं अज्जयदि पाव बुद्धीए।**

**परिहरदि दयादाणं, सो जीवो भमदि संसारे।। (30)** पृ. 17

यह संसारी जीव पुत्र और स्त्री के निमित्त से पाप बुद्धि से धन कमाता है तथा दया और दान को छोड़ देता है। वह जीव संसार में भ्रमण करता है।

जो गृहस्थ व्यापार में भोग राग में विषय-वासना में लिप्त होता हुआ भी श्रावक-योग्य दान-पूजा आदि धर्म को नहीं करता तथा एकांत आध्यात्मिकवाद का सहारा लेकर श्रावक योग्य क्रियाओं से पुण्य बंध होता है और पुण्य संसार का कारण मानकर पुण्य क्रिया से रहित हो पाप क्रियाओं में रत रहता है उसके लिए देवसेनाचार्य ने भावसंग्रह में निम्न प्रकार किया है-

**मुक्खं धम्मज्झाणं उत्तं तु पम्मायविरहिए ठाणे।**

**देस विरए पमत्ते उवयारेणेव णायव्वं।। (371)**

यह धर्मध्यान मुख्यताः से प्रमाद सहित सातवें गुणस्थान में होता है तथा देशविरत पाँचवें गुणस्थान में और प्रमत्त संयत छठे गुणस्थान में भी यही धर्मध्यान उपचार से होता है।

**एवं तं सालंवं धम्मज्झाणं हवेइ नियमेण।**

**इयंताणं जायइ विणिज्जरा असुहकम्माणं।। (380)**

इन पंच परमेष्ठियों का ध्यान नियमपूर्वक आवलम्बन सहित धर्मध्यान कहलाता है। इन पाँचों परमेष्ठियों का ध्यान करने से अशुभ कर्मों की विशेष निर्जरा होती है।

**जो भणइ को वि एवं अत्थि निहत्थाण णिच्चलं झाणं।**

**सुद्धं च णिरालंवं ण मुणइ सो आयमो जइणो।। (382)**

यदि कोई पुरुष यह कहे कि गृहस्थों के भी निश्चल, निरालंब और शुद्ध ध्यान होता है तो समझना चाहिए कि इस प्रकार कहने वाला पुरुष मुनियों के शास्त्रों को ही नहीं मानता है।

**किं जं सो गिहवंतो बहिरंतगंथपरमिओ णिच्चं।**

**वहु आरम्भपउत्तो कह झायइ सुद्धप्पाणं।। (384)**

गृहस्थों के मुख्य धर्मध्यान न होने के कारण यह है कि गृहस्थों के सदाकाल बाह्य आभ्यंतर परिग्रह परिमित रूप से रहते हैं तथा आरंभ भी अनेक प्रकार के बहुत से होते हैं इसलिए वह शुद्ध आत्मा का ध्यान कभी नहीं कर सकता।

**घर बाबारा केई करणीया अत्थि ते ण ते सव्वे।**
**झाणट्ठियस्य पुरओ चिट्ठंति णिमीलियच्छिस्स।। (385)**

गृहस्थों को घर के कितने ही काम करने पड़ते हैं। जब वह गृहस्थ अपने नेत्रों को बंदकर ध्यान करने बैठता है तब उसके सामने घर के करने योग्य सब व्यापार स्मरण में आ जाते हैं।

**अह ढिंकुलियां झाणं झायइ अहवा स सोवए झाणी।**
**सोवंतो झायव्वं ण ठाइ चित्तम्मि वियलम्मि।। (386)**

जो कोई गृहस्थ शुद्ध आत्मा का ध्यान करना चाहता है तो उसका वह ध्यान ढेकी के समान होता है। जिस प्रकार ढेकी धान कूटने में लगी रहती है परन्तु उससे उसका कोई लाभ नहीं होता उसको तो परिश्रम मात्र ही होता है। इसी प्रकार गृहस्थों का निरालंब ध्यान व शुद्ध आत्मा का ध्यान परिश्रम मात्र होता है अथवा शुद्ध आत्मा का ध्यान करने वाला गृहस्थ उस ध्यान के बहाने सो जाता है। जब वह सो जाता है तब उसके चित्त में वह ध्यान करने योग्य शुद्ध आत्मा कभी ठहर नहीं सकता। इस प्रकार किसी भी गृहस्थ के शुद्ध आत्मा का निश्चल ध्यान कभी नहीं हो सकता।

**झाणाणं संताणं अहवा जाएइ तस्स झाणस्य।**
**आलंवण रहियस्स य ण ठाइ चित्तं थिरं जम्हा।। (387)**

अथवा वह सोता नहीं तो उसके ध्यानों की संतान रूप परंपरा चलती रहती है। इसका भी कारण यह है कि निरालंब ध्यान करने वाले गृहस्थ का चित्त कभी भी स्थिर नहीं रह सकता।

**तम्हा सो सालंवं झायउ झाणं पि गिहवई णिच्चं।**
**पंच परमेष्ठिरूव अहवा मंतक्खरं तेसिं।। (388)**

इसलिए गृहस्थों को सदा काल आलंबन सहित ध्यान धारण करना चाहिए। या तो उसे पंचपरमेष्ठी का ध्यान करना चाहिए अथवा पंचपरमेष्ठी के वाचक मंत्रों का ध्यान करना चाहिए।

## पात्र विशेष से शुभोपयोग का फल विशेष होता है

**रागो पसत्थभूदो वत्थुविसेसेण फलदि विवरीदं।**
**णाणाभूमिगदाणिह बीजाणिव सस्सकालम्हि।। (255)** प्र.सा.

The auspicious attachment fruits otherwise according to the object with which it is associated, like the seeds, at the sowing time, sown in different kinds of fields.

(पसत्थभूदो रागो) धर्मानुरागरूपदान पूजादिक (वत्थुविसेसेण) पात्र की विशेषता से (विवरीदं) भिन्न-भिन्न रूप फलता है (सस्सकालम्हि) जैसे धान्य की उत्पत्ति के काल में (णाणाभूमिगदाणिह) नाना प्रकार की पृथ्वियों में प्राप्त (बीजाणिव) बीज निश्चय से (फलदि) विभिन्न रूप फलता है।

जैसे ऋतु काल में तरह-तरह की भूमियों में बोये हुए बीज जघन्य, मध्यम व उत्कृष्ट भूमि के निमित्त से वही बीज भिन्न-भिन्न प्रकार के फलों को पैदा करता है, तैसे ही यह बीजरूप शुभोपयोग भूमि के समान जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट पात्रों के भेद से भिन्न-भिन्न फल को देता है। इस कथन से यह भी सिद्ध हुआ है कि यदि सम्यग्दर्शन पूर्वक शुभोपयोग होता है तो मुख्यता से पुण्यबंध होता है परन्तु परंपरा से वह निर्वाण का कारण है। मात्र पुण्यबंध को ही नहीं करता है।

**समीक्षा**–प्रत्येक कार्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आदि को लिए हुए होता है। इसमें एक भी कारण की हीनाधिकता से या विपरीतता होने से कार्य में भी हीनाधिकता या विपरीतता आ जाती है। इसी सिद्धांत के अनुसार पात्र विशेष से शुभोपयोग का फल भी विशेष होता है। जैसे उत्तम दूध भी अशुद्ध पात्र में रखने पर अशुद्ध हो जाता है, किन्तु शुद्ध पात्र में रखने पर शुद्ध रहता है। घी को शुद्ध मिट्टी के बर्तन में रखने पर उसके गुण में वृद्धि होती है लेकिन उसी घी को काँसे के बर्तन में रखने पर कुछ दिन बाद वह विष रूप में परिणित हो जाता है। लोहा चुंबक के संपर्क से चुंबक बन जाता है और लोहे में पानी-मिट्टी के संपर्क से जंग लग जाता है। इसी प्रकार स्वाति नक्षत्र का जल बिंदु कदली (केले) में जाकर कपूर रूप में परिणमन करता है। सर्प में जाकर विषरूप में परिणमन करता है और सीप में जाकर मोती रूप में परिणमन करता है। एक कवि ने कहा भी है-

**कदली सीप भुजंग कह, स्वाति एक गुण तीन।**
**जैसे संगति बैठिए, तैसे ही फल दीन।।**

पूज्यपाद स्वामी ने पात्र विशेष के लिए कृत दान-सेवा आदि का फल किस प्रकार विशेषता लिए होता है उसका वर्णन विशेष रूप से किया है। यथा-

**उप्तं यथोषरक्षेत्रे बीजे भवति निष्फलं।**

**तथाऽपात्राय यद्दत्तं निष्फलं तत्र संशयः।।** पूज्यपाद श्रा.पृ. 21 श्लोक 48

ऊसर भूमि में बोया हुआ बीज जिस प्रकार निष्फल होता है उसी प्रकार अपात्र को दिया हुआ दान निष्फल होता है इसमें कोई संशय नहीं।

**आमपात्रगतं क्षीरं यथा नश्यति तत्समं।**

**तथा तदप्य पात्रेण समं नश्यति निश्चयः।। (49)**

जिस प्रकार मिट्टी के कच्चे बर्तन में भरा दूध पात्र सहित नष्ट हो जाता है उसी प्रकार अपात्र में दिया हुआ दान निश्चय से नाश को प्राप्त होता है।

**जायते दंत शूकस्य दत्तं क्षीरं तथा विषं।**

**तथाऽपात्राय यद्दतं तद्विषं भोजनं भवेत्।। (50)**

जैसे सर्प को पिलाया हुआ दूध विष हो जाता है उसी प्रकार अपात्र को दिया हुआ भोजन भी विष हो जाता है अर्थात् अपात्र को दिया हुआ भोजन अपने को अशुभ फलदाता होता है।

जिस प्रकार एक ही कुएँ का जल इक्षु की जड़ में गया तो मीठा रस होता है और नींबू के वृक्ष में सींचा हुआ जल कटुक रस हो जाता है उसी प्रकार पात्र को दिया हुआ दान सुखदायक और अपात्र को दिया हुआ दान दुःखदायक होता है।

**न्यग्रोधस्य यथा बीजं स्तोकं सुक्षेत्रभूमिगं।**

**बहुविस्तीर्णतां याति तद्वछानं सुपात्रगं।। (52)**

जिस प्रकार बड़ा का छोटा-सा बीज अच्छी जगह में बोया हुआ बड़े विस्तृत वृक्ष को उत्पन्न करता है उसी प्रकार सुपात्र में दिया दान महाफल को देता है।

जो मनवचतन को शुद्ध करके सत्पात्र में दान देते हैं उसके फल से वे मनुष्य सौधर्मादि स्वर्गों में उत्तम देव रूप में उत्पन्न होकर मनवांछित फल भोगते हैं।

**मिथ्यादृशोऽपि दानं ते दत्वा पात्राय भुंजते।**

**दशांगकल्पवृक्षेभ्यः सत्सुखं भोगभूमिषु।। (58)**

यदि मिथ्यादृष्टि जीव भी पात्रादान करे तो भोगभूमि में जन्म लेकर वहाँ पर दशांग कल्पवृक्षों से मनवांछित सुख भोगते हैं।

कुपात्र को दान देने से जीव कुभोगभूमियों में जहाँ लंबे-चौड़े कानों ही से वस्त्र का काम लेते हैं ऐसे कुरूप मनुष्य होते हैं।

**श्रद्धा भक्तिरलोभत्वं दयाशक्तिक्षमान्विताः।**

**विज्ञानं चेति सप्तेति गुणा दातुः प्रकीर्तिताः।। (64)**

श्रद्धा, भक्ति, अलोभता, दया, शक्ति, क्षमा और विज्ञान (वा विनय) ये दानी गृहस्थ के सात गुण हैं। इन गुणों सहित ही दाता को होना चाहिए।

**ज्ञानवान ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।**

**अन्नदानात्सुखीनित्यं निर्व्याधिर्भेषजात्भवेत्।। (71)**

मनुष्य ज्ञानदान करने से अगले भव में ज्ञानवान, अभयदान से निर्भय, अन्नदान से सदा सुखी और औषधिदान से निरोगी होता है।

रयणसार में कुंदकुंद देव आचार्य ने भी उपरोक्त सिद्धांत का प्रतिपादन निम्न प्रकार से किया है-

**जिणपूजा मुणिदाणं करेइ जो देइ सत्ति रुवेण।**

**सम्माइट्ठी सावय धम्मी सो होइ मोक्खमग्गरओ।। (13)** रयणसार पृ.73

जो भव्य प्रभावना सहित अपने न्यायपूर्वक कमाये हुए धन से अनेक प्रकार से भगवान् जिनेन्द्र की गाजे-बाजे से नृत्यादि करता हुआ अभिषेक कर उत्सव सहित पूजा करता है और चर्तुविध संघ को द्रव्य, क्षेत्र, काल का विचार कर नवधाभक्ति तथा सात गुण संयुक्त होता हुआ पंचसूनों से रहित, प्रासुक, शक्ति के अनुसार दान करता है वह सम्यग्दृष्टि श्रावक धर्मात्मा मोक्षमार्ग में रत होता है।

**पूयफलेण तिलोए सुरपुज्जो हवेइ सुद्धमणो।**

**दाणफलेण तिलोए सारसुंह भुजंदे णियदं।। (4)**

पूजा करने के फल से तीनों लोक में देवों के द्वारा सेवनीय तीर्थंकर आदि शुद्ध सम्यग्दृष्टि भाव सहित होता है, सत्पात्रों के लिए दान देने के प्रभाव से ऊर्ध्व, मध्य अधोलोक में निश्चय से निरंतर श्रेष्ठ सुखों को भोग करता है।

**दिण्णइ सुपत्तदाणं विसेसदो होइ भोगसग्गमही।**

**णिव्वाणसुहं कमसो णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं।। (6)**

निर्ग्रंथ दिगम्बर मुनि संघ को सुपात्र कहते हैं उनके लिए दान देना चाहिए। विशेष रूप से दाता भोगभूमि और स्वर्ग के सुखों को प्राप्त होता है। दाता क्रम से

निर्वाण के सुख को प्राप्त होता है। यह जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा उपदेश दिया गया है।

यथायोग्य समय में अच्छी मिट्टी वाली खाद डाले गए जुते हुए खेत में अच्छा निर्दोष बीज बोया गया हो तो विशेष फसल और फल प्राप्त होता है उसी प्रकार पात्र विशेष के हाथ में दिए गए दान का फल जानना चाहिए।

जो पुरुष इस लोक में अपनी संपत्ति बीज को जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे गये सप्त क्षेत्रों में वितरित करता है वह तीन लोक के राज्य सुख के फल को भोगकर पाँच कल्याण के फल को प्राप्त होता है।

माता-पिता, पुत्र-मित्र, स्त्री-गायादिक धन सोना-चाँदी, मकान आने-जाने की सवारी और अनेक प्रकार का वैभव तथा जगत् के सबसे उत्तम सुख को प्राप्त होता है, जितनों के नाम अंकित किये गये हैं और नहीं किये गये हैं वे सब सुपात्र के लिए पूर्व में दिए गए दान का ही फल है।

**सत्तंगरज्ज णवणिहि भण्डार सडंगबल चउदहरयणं।**

**छण्णवदि सहस्सित्थी विहवं जाणउ सुपत्तदाणफलं।। (20)** रयणसार पृ.82

राज्य के सात अंग (राजा, मंत्री, मित्र, कोष, देश, दुर्ग, सेना ये राज्य के सप्त अंग है) नौ निधि (काल, महाकाल, पांडु, मानव, शंख, पद्म, नैसर्प, पिंगला, सर्वरत्न) हीरा, पन्ना, सोना, चाँदी, धान, रुपयादि रखने के स्थान को भंडार कहते है) छह राज्य के अंग बल (हाथी, घोड़ा, रथ, सेना, पैदल, हथियार) पवनंजय घोड़ा, विजयागिरि हाथी, भद्रमुख गृहपति, कामवृष्टि, अयोद्धसेनापति, सुभद्रा पत्नी, बुद्धिसमृद्ध पुरोहित ये सात चेतन और चक्ररत्न, दण्डरत्न, छत्ररत्न, तलवाररत्न, कांकणीरत्न, चिंतामणिरत्न और चर्मरत्न ये सात अचेतन ये कुल चौदह रत्न, छियानवे हजार स्त्री, अट्ठारह करोड़ घोड़े, चौरासी लाख हाथी, चौरासी लाख रथ इत्यादि और अनेक वैभव सत्पात्र के लिए दान का फल जानो अथवा जानना चाहिए।

**सुकुल सुरूव सुलक्खण सुमइ सुसिक्खा सुसील सुगुणसुचरित्तं।**
**सुहलेस्सं सुहणामं सुहसादं सुपत्तदाण सुच फलं।। (21)**

उत्तम कुल, सुंदर रूप, अच्छे लक्षण, शुभमति, धार्मिक सदाचार की शिक्षा सुशील और अनेक भेदवाले चरित्र को प्राप्त होता है। पीत, पद्म शुक्ल इन शुभलेश्या को, शुभनाम कर्म, साता वेदनीय को प्राप्त होना सत्पात्र के लिए दिए गए दान का ही फल समझना चाहिए।

**जो मुणिभुत्तवसेसं भुंजदि सो भुंजए जिणुद्दिट्ठं।**
**संसारसारसोक्खं कमसो णिव्वाणवरसोक्खं।। (22)**

जो भव्य सम्यग्दृष्टि जहाँ जिस घर में मुनिराज का आहार हुआ है और रसोईघर में रसोई शेष बची है उसका सेवन करता है वह भव्य संसार के उत्तमोत्तम सुखों को भोगता है क्रम से जगत् के सुखों से श्रेष्ठ निर्वाण सुख को प्राप्त होता है ऐसा जिनेन्द्र भगवान् ने उपदेश दिया है।

आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है-

**विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः।। (39)** राजवार्तिक ॥ पृ. 29

विधिविशेष, दाताविशेष, द्रव्यविशेष और पात्रविशेष से दान के फल से फल विशेष की प्राप्ति होती है।

**ततश्च फलविशेषः क्षित्यादि विशेषाउ बीजफल विशेषवत्।। (6)**

राजवार्तिक ॥ पृ. 430

ततश्च विध्यादि विशेषाद्दानफलविशेषो भवति, यथा क्षित्यादिकारणविशेषसन्निपाते सति नानाविध-बीजफल विशेष इति।

पृथ्वी, जल आदि विशेष से जैसे बीज-फल विशेष को देता है वैसे ही विधि विशेष आदि से फल विशेष की प्राप्ति होती है। जैसे भूमि बीज आदि कारणों में गुणवत्ता (विधिविशेषादि) होने से फल विशेष की प्राप्ति होती है अर्थात् अत्यधिक फलोत्पत्ति देखी जाती है। नाना प्रकार से बीजों की उत्पत्ति होना उसका विशेष है। उसी प्रकार विधि विशेष, दातृ विशेष, द्रव्य विशेष और पात्र विशेष से दान के फल में विशेषता आती है।

## धर्म व अध्यात्म में समानता व अंतर

**(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)**

धर्म है वस्तु स्वभावमय जो, हर द्रव्य में स्थित होता है।
जीव-अजीव व मूर्तिक-अमूर्तिक, हर द्रव्य धर्ममय होता है।।

आध्यात्मिक है जीव का शुद्ध स्वरूप, जो चैतन्य स्वरूप होता है।
ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय व सच्चिदानंद स्वरूप होता है।

हर द्रव्य में स्थित गुणों को 'स्वभाव' 'शक्ति' या 'धर्म' कहते हैं।

'लक्षण' या 'विशेष' रूप में भी, धर्म का कथन भी करते हैं।। (1)

हर द्रव्य में होते सामान्य गुण, 'अस्तित्व' 'वस्तुत्व' व 'द्रव्यत्व'।
'प्रमेयत्व' 'अगुरुलघुत्व' 'प्रदेशत्व' सहित होते हर द्रव्य।

किन्तु जीवों में होते विशेष गुण, अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय।
अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह समता शांति क्षमामय।। (2)

आत्मविश्वास अनुभवज्ञान, सदाचरण सहिष्णुता उदारमय।
भेद-विज्ञान युक्त विवेकज्ञान, ध्यान-अध्ययन व तप-त्याग।

शुद्ध-बुद्ध व परमात्म अवस्था, होती है परम आध्यात्मिकमय।
इसे प्राप्त हेतु जो होती है प्रक्रिया, उसे भी कहते हैं धर्ममय।। (3)

यथा पूजा-पाठ जप आराधना, तीर्थयात्रा वंदना प्रार्थना स्तवन।
दान दया सेवा व परोपकार, वैयावृत्ति, सहयोग-उपवास-मौन।

किन्तु आध्यात्मिक बिना उक्त धर्मकाम से नहीं मिलती है परम मुक्ति।
भले इसी से मिले सांसारिक सुख, भोगोपभोग-ख्याति-पूजा-प्रसिद्धि।। (4)

इसी से संसार में ही परिभ्रमण होता, चौरासी लाख योनि व चतुर्गति में।
जन्म-जरा-मरण-रोग-शोक मिलते, परम सुख न मिले संसार में।

मोक्ष प्राप्ति हेतु (अतः) जीवों को आध्यात्मिक, चाहिए जीवों का शुद्ध स्वरूप।
अतएव 'कनकनन्दी' आध्यात्मिक, सेवन करे पाने को शुद्ध स्वरूप।। (5)

## सन्दर्भ-

**सद्दहदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो य फासेदि।**
**धम्म भोग-निमित्तं णदु सो कम्मक्खयणिमित्त।। (275)** (समयसार)

अभव्य जीव नित्य कर्मफल चेतना रूप वस्तु की श्रद्धा करता है किन्तु नित्य ज्ञान चेतना मात्र वस्तु की श्रद्धा नहीं करता क्योंकि वह सदा (स्व-पर के) भेद-विज्ञान के अयोग्य हैं। इसलिये वह कर्मों से छूटने के निमित्त रूप, ज्ञान मात्र, भूतार्थ (सत्यार्थ) धर्म की श्रद्धा नहीं करता, भोग के निमित्त रूप, शुभ कर्म मात्र, अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा करता है; इसलिये वह अभूतार्थ धर्म की श्रद्धा, प्रतीति, रूचि और स्पर्शन से ऊपर के ग्रैवेयक तक के भोग मात्र को प्राप्त होता है किन्तु कभी भी कर्मों

से मुक्त नहीं होता। इसलिये उसे भूतार्थ धर्म के श्रद्धान का अभाव होने से (यथार्थ) श्रद्धान भी नहीं है।

## शुद्धोपयोग से दुःख क्षय होता है

**एवं विदिदत्थो जो दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा।**
**उवओगविसुद्धो सो खवेदि देहुब्भवं दुक्खं।। (78)**

इस तरह निश्चय नय से शुभ तथा अशुभ उपयोग को समान जानकर निश्चय शुद्धात्म तत्त्व होता हुआ संसार के दुःखों के क्षय के लिए शुद्धोपयोग के साधन को स्वीकार करता है, ऐसा कहते हैं।

(एवं विदिदत्थो जो) इस तरह चिदानंदमयी एक स्वभाव रूप परमात्म तत्त्व को उपादेय तथा इसके सिवाय अन्य सर्व को हेय जान करके हेयोपादेय के यथार्थ ज्ञान से तत्त्व स्वरूप का ज्ञाता होकर जो कोई (दव्वेसु ण रागमेदि दोसं वा) अपने शुद्ध आत्म द्रव्य से अन्य शुभ तथा अशुभ सर्व द्रव्यों में राग-द्वेष नहीं करता है। (सो उपओग विसुद्धो) वह रागादि से रहित शुद्धात्म, अनुभवमयी लक्षण वाले शुद्धोपयोग से विशुद्ध होता हुआ (देहुब्भवं दुःखं खवेदि) देह के संयोग से उपन्न दुःख का नाश करता है अर्थात् यह शरीर गर्म लोहे के पिण्ड समान है। उससे उत्पन्न दुःख को जो निराकुलता लक्षणमयी निश्चय सुख से विलक्षण है और बड़ी भारी आकुलता को पैदा करने वाला है, वह संयमी आत्मा लोह पिण्ड से रहित अग्नि के समान अनेक चोटों का स्थान जो शरीर उससे रहित होता हुआ नाश कर देता है यह अभिप्राय है।

**समीक्षा**–बंध या संयोग कभी भी एकाधिक द्रव्य में ही होता है परन्तु एक द्रव्य में नहीं होता है। इसीलिए जीव जब राग-द्वेषादि वैभाविक भाव, परभावों से रहित होता है तब वह निर्बन्धावस्था को प्राप्त करता है। उस अवस्था में नवीन बंध तो नहीं होता परन्तु पूर्वोपार्जित कर्म भी विश्लेषित/पृथक्/निर्जरित होता जाता है। इसलिये कुंदकुंद स्वामी ने कहा है-

**एयत्तणिच्छयगओ समओ सण्वत्थ सुंदरो लोए। (3)** समयसार

एकत्व निश्चय में प्राप्त जो समय है वह सब लोक में सुंदर है।

अपने ही शुद्ध गुण और पर्यायों में परिणमता हुआ अथवा अभेद रत्नत्रय में परिणमता हुआ एकता के निश्चय में प्राप्त हुआ आत्मा-समय शब्द से आत्मा लेने योग्य

है क्योंकि इसकी उत्पत्ति इस प्रकार है 'सम्यक् अयते गच्छति परिणमति कान् स्वकीयगुणपर्यायान्' अर्थात् जो भले प्रकार अपने ही गुण और पर्यायों को परिणमन करे सो समय अर्थात् आत्मा सब ही ठिकाने सबको सुहावना है। इस संसार में सब ही एकेन्द्रियादि अवस्था में शुद्ध निश्चयनय से सुंदर है उपादेय है।

**सुद्धहँ संजमु सीलु तउ सुद्धहं दंसणु णाणु।**
**सुद्धहँ कम्मक्खउ हवइ सुद्धउ तेण पहाणु।। (67)** परमात्म प्रकाश 188

शुद्धोपयोगियों के ही पाँच इन्द्रिय छट्ठे मन को रोकने रूप संयम शील और तप होते हैं, शुद्धोपयोगियों के ही सम्यग्दर्शन और वीतराग स्वसंवेदन ज्ञान और शुद्धोपयोगियों के ही कर्मों का नाश होता है इसलिए शुद्धोपयोग ही जगत् में मुख्य है।

मिथ्यात्व रागादि से रहित जो शुद्ध परिणाम है, वही अपना है और अशुद्ध परिणाम अपने नहीं है, सो शुद्ध भाव को ही धर्म समझकर अंगीकार करो। जो आत्म धर्म चारों गतियों के दुःखों में संसार में पड़े हुए इस जीव को निकालकर आनंद स्थान में रखता है।

**सिद्धिहिं केरा पंथडा भाउ विसुद्धउ एक्कु।**
**जो तसु भावहँ मुणि चलइ सो किम होइ विमुक्कु।। (68)**

मुक्ति का मार्ग एक शुद्ध भाव ही है। जो मुनि उस शुद्ध भाव से चलायमान हो जाये, तो वह कैसे मुक्त हो सकता है? किसी प्रकार नहीं हो सकता।

**जहिं भावइ तहिं जाहि जिय जं भावइ करि तं जि।**
**केम्वइ मोक्खु ण अत्थि पर चित्तहं सुद्धि ण जं जि।। (70)**

हे जीव, जहाँ तेरी इच्छा हो उसी देश में जा, और जो अच्छा लगे वही कर लेकिन जब तक मन की शुद्धि नहीं है तब तक किसी तरह मोक्ष नहीं हो सकता।

**कोधं जहे विप्पजहेय्य मानं, सञ्ञोजनं सब्बमतिक्कमेदय।**
**तं नामरूपस्मिं असज्जमानं, अकिंचनं नानुपतन्ति दुक्खा।। (1)** धम्मपद पृ.72

क्रोध को छोड़े, अभिमान का त्याग करे, सारे संयोजनों (बंधनों) से पार हो जाये, ऐसे नाम-रूप में आसक्त न होने वाले तथा परिग्रह रहित को दुःख संताप नहीं देते।

**सदा जागरमानानं अहोरत्तानुसिक्खिनं।**
**निव्वानं अधिमुत्तानं अत्थं गछन्ति आसवा।। (6)**

सदा जागरणशील हो, दिन-रात योगाभ्यास में लगे रहने वाले तथा निर्वाण के उद्देश्य वाले (पुरुषों) के आश्रव नष्ट हो जाते हैं।

## मोह त्याग बिना शुद्धात्मोपलब्धि नहीं

**चत्ता पावारंभं समुट्ठिदो वा सुहम्मि चरियम्हि।**
**ण जहदि जदि मोहादि ण लहदि सो अप्पगं सुद्धं।। (79)**

Having abandoned sinful activities and proceeding on the path of auspicious conduct, if one does not abandon delusion etc., he cannot realize the pure self.

(पावारंभं चत्ता) पहले गृह में वास करना आदि पाप के आरंभ को छोड़कर (वा सुहम्मि चरियम्हि समुट्ठिदो) तथा शुभ चारित्र में भले प्रकार आचरण करता हुआ (जदि मोहादि ण जहदि) यदि कोई मोह-राग-द्वेष आदि भावों को नहीं त्यागता है। (सो अप्पगं सुद्धं ण लहदि) सो शुद्ध आत्मा को नहीं पाता है। इसका विस्तार यह है कि कोई भी मोक्ष का अर्थी पुरुष परम उपेक्षा या वैराग्य के लक्षण को रखने वाले परम सामायिक करने के पूर्व में प्रतिज्ञा करके पीछे विषयों के सुख के साधन के लिए जो शुभोपयोग की परिणतियाँ हैं उसमें परिणमन करके अंतरंग में मोही होकर यदि निर्विकल्प समाधि लक्षणमयी पूर्व में कहे हुए मोह रहित शुद्ध आत्म तत्त्व के विरोधी मोह आदि को नहीं छोड़ता है, तो वह जिन या सिद्ध के समान अपने आत्म स्वरूप नहीं पाता है।

**तवसंजमप्पसिद्धो सुद्धो सग्गापवग्गमग्गकरो।**
**अमरासुरिंदमहिदो देवो सो लोयसिहरत्थो।। (79-1)**

आगे शुद्धोपयोग के अभाव में जिस तरह के जिन व सिद्ध स्वरूप को यह नहीं प्राप्त करता है उसको कहते हैं-

(सो देवो) वह देव (तवसंजमप्पसिद्धो) सर्व रागादि परभावों की इच्छा के त्याग रूप अपने स्वरूप में दीप्तमान होना ऐसा सो तप तथा बाहरी इन्द्रिय संयम और प्राणी संयम के बल से अपने शुद्धात्मा में स्थिर होकर समता रस के भाव से परिणमना सो संयम, इन दोनों से सिद्ध हुआ है, (सुद्धो) क्षुधा आदि अठारह दोषों से रहित शुद्ध वीतराग है, (सग्गापवग्गमग्गकरो) स्वर्ग तथा केवल ज्ञान आदि अनंत चतुष्टय लक्ष्य रूप मोक्ष इन दोनों मार्ग का उपदेश करने वाला है, (अमरासुरिंदमहिदो) उस ही पद

के इच्छुक स्वर्ग के अथवा भवनत्रिक के इन्द्रों द्वारा पूजनीय है, तथा (लोयसिहरत्थो) लोक के अग्र शिखर पर विराजित है, ऐसा जिन सिद्ध का स्वरूप जानना योग्य है।

**तं देवदेवं जदिवरवसहं गुरुं तिलोयस्स।**
**पणमंति जे मणुस्सा ते सोक्खं अक्खयं जंति।।**

आगे सूचना करते हैं कि जो कोई इस प्रकार निर्दोष परमात्मा को मानते हैं, अपनी श्रद्धा में लाते हैं वे ही अविनाशी आत्मिक सुख को पाते हैं-

(जे मणुस्सा) जो कोई भव्य मनुष्य आदिक (तं देवदेव) उस महादेव को जो देवों के देव सौधर्म इन्द्र आदि का भी देव है अर्थात् उनके द्वारा आराधना के योग्य है, (जदिवरवसहं) इन्द्रियों के विषयों को जीतकर अपने शुद्ध आत्मा में यत्न करने वाले यतियों में श्रेष्ठ जो गणधरादिक उनमें भी प्रधान है, तथा (तिलोयस्स गुरु) अनंतज्ञान आदि महान् गुणों के द्वारा जो तीन लोक का भी गुरु है, उसे (पणमंति) द्रव्य और भाव नमस्कार के द्वारा प्रणाम करते हैं तथा पूजते हैं व उसका ध्यान करते हैं (ते) वे उसकी सेवा के फल से (अक्खयं सोक्खं जंति) परम्परा से अविनाशी अतीन्द्रिय सुख को पाते हैं ऐसा सूत्र का अर्थ है। यहाँ आचार्य ने उपासक के लिए यह शिक्षा दी है कि 'जो जैसा भावै सो तैसा हो जावै' अविनाशी अनंत अतीन्द्रिय सुख का निरंतर लाभ आत्मा की शुद्ध अवस्था में होता है। उस अवस्था की प्राप्ति का उपाय यद्यपि साक्षात् शुद्धोपयोग में तन्मय होकर निर्विकल्प समाधि में वर्तन करना है तथापि परम्परा से उसका उपाय अरहंत और सिद्ध आदि परमेष्ठी उनको नमस्कार करना, पूजन करना, स्तुति करना आदि है।

**(जीव एवं कर्म सिद्धांत संबंधी शोधपूर्ण कविता)**

## विश्व के सभी जीवों की अवस्थाएँ व मोक्ष अवस्था

**(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)**

जीवों के शुभाशुभ परिणामों से (कर्म) परमाणु परिणमते कर्म रूप से।
जीवों के असंख्यात (लोक प्रमाण) परिणामों से, कर्म बनते असंख्य रूप से।। (ध्रुव)

कर्म परमाणु तो जड़ रूप है, उनमें नहीं है चैतन्य गुण।
राग-द्वेष-काम-क्रोध-मद-मोह, नहीं होते हैं ज्ञान सुखादि गुण।।

शुद्ध चैतन्य गुण होते हैं शुद्ध, ज्ञान दर्शन सुख वीर्य गुण।

राग द्वेषादि होते है जीव व, कर्म परमाणु के मिश्रित गुण।। (1)

अतः राग-द्वेषादि की नहीं स्वतंत्र, शुद्ध रूप से मौलिक सत्ता।
ये तो अशुद्ध व मिश्र अवस्था, जिसके अस्तित्व से सांसारिक सत्ता।।

जीवों में भी है अनंत शक्ति (तथाहि) अनंत शक्ति कर्म परमाणु में।
परस्पर की बंध अवस्था में प्रगट, न होती दोनों की अनंत शक्ति।। (2)

दोनों ही दोनों की शक्ति खण्डित करते, जिससे दोनों होते दुर्बल।
दोनों के अशुद्ध परिणमन से, सूक्ष्म जीवों से बनते मानव तक।।

चौरासी लाख योनि मध्य में, इस चतुर्गति रूप संसार में।
अनादि अनंत काल से जीव, भ्रमण करते पंच परिवर्तन में।। (3)

जीव है अनंत, काल है अनंत, कर्म (परमाणु) है अनंतानंत संसार में।
भाव-कर्म अनुसार जीव जन्मते, मरते विभिन्न प्रजाति में।।

सूक्ष्म जीव भी मरकर बनते हैं, विशाल जीव अन्य प्रजाति में।
विशाल जीव भी मरकर बनते हैं, सूक्ष्म जीव अन्य प्रजाति में।। (4)

शरीर इन्द्रिय मन का भी होता, क्रम विकास व ह्रास भी।
ऐसा परिणमन अनंतबार भी संभव, मोक्ष प्राप्ति के पूर्व ही।।

जो मानव आध्यात्मिक विकास करते, वे प्राप्त करते मोक्ष ही।
मोक्ष ही जीवों का परम विकास, यह सच्चिदानंद स्वरूप ही।। (5)

परम अवस्था प्राप्ति के अनंतर, संसार में न होता पुनरागमन।
जन्म-जरा-मृत्यु-रोग-शोक रहित, तथाहि राग-द्वेष-मोह से (पूर्ण) शून्य।।

इन सब विषयों को भौतिक विज्ञानी, दार्शनिक तक नहीं जानते।
इन कारणों से उनके मत सार्वभौम (व) परम सत्य भी नहीं होते।। (6)

यह सब ज्ञानगम्य सर्वज्ञ द्वारा, पूर्वाचार्यों द्वारा भी ग्रंथ लिखित।
उनके अध्ययन मनन द्वारा, 'कनकनन्दी' द्वारा यह काव्य लिखित।। (7)

नन्दौड़, दिनांक 07.12.2015, रात्रि 7.55

**संदर्भ-**

## आत्मा शरीर नहीं तथा उसका कर्त्ता नहीं

**णाहं पोग्गलमइओ ण ते मया पोग्गला कया पिंडं।**

**तम्हा हि ण देहोऽहं कत्ता वा तस्स देहस्स।। (162)** (प्र.सा.)

I am neither made of matter, nor is the matter iumped by me; therefore, I am neither the body nor the maker of that body.

(णाहं पोग्गलमइयो) मैं पुद्गल-मई नहीं हूँ (ते पोग्गला पिंडमया ण कया) तथा वे पुद्गल के पिंड जिनसे मन, वचन, काय बनते हैं मेरे से बनाए हुए नहीं हैं (तम्हा) इसलिये (हि) निश्चय से (अहं देहो ण) मैं शरीर रूप नहीं हूँ (वा तस्स देहस्य कत्ता) और न उस देह का बनाने वाला हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ क्योंकि मैं वास्तव में शरीर रहित सहज ही शुद्ध चैतन्य की परिणति को रखने वाला हूँ इससे मेरा और शरीर का विरोध है और न मैं इस शरीर का कर्त्ता हूँ क्योंकि मैं क्रिया रहित परम चैतन्य ज्योतिरूप परिणति का ही कर्त्ता हूँ, मेरा कर्त्तापना देह के कर्त्तापन से विरोध रूप है।

## विचित्र भाव से विचित्र कर्म

**परिणमदि जदा अप्पा सुहम्हि असुहम्हि रागदोसजुदो।**

**तं पविसदि कम्मरयं णाणावरणादिभावेहिं।। (187)** प्र.सार.

When the soul, under the influence of attachment or aversion develops itself into auspicious or inauspicious resultant of consciousness, the karmic dust pours into it in the form of knowledge-obscuring etc.

(जदा) जब (रागदोसजुदो) राग-द्वेष सहित (अप्पा) आत्मा (सुहम्मि असुहम्मि) शुभ या अशुभ भाव में (परिणमदि) परिणमन करता है तब (कम्मरयं) कर्मरूपी रज स्वयं (णाणावरणादिभावेहिं) ज्ञानावरणादि की पर्यायों से (पविसदि) जीव में प्रवेश कर जाती है। जब यह राग-द्वेष में परिणमता हुआ आत्मा सर्वशुभ तथा अशुभ द्रव्य में परम उपेक्षा के लक्षण रूप शुद्धोपयोग परिणाम को छोड़कर शुभ परिणाम में या अशुभ परिणाम में परिणमन करता है उसी समय में, जैसे भूमि के पुद्गल जल के संयोग को पाकर आप ही हरी घास आदि अवस्था में परिणमन करते हैं, इसी तरह कर्म पुद्गल कर्म रूपी रज नाना भेद को धरने वाले ज्ञानावरणादि मूल तथा उत्तर

प्रकृतियों की पर्यायों में स्वयं परिणमन करती है। इससे जाना जाता है कि (उपादान की अपेक्षा) ज्ञानावरणादि कर्मों की उत्पत्ति उन्हीं के द्वारा होती है तथा उनमें मूल व उत्तर प्रकृतियों की विचित्रता भी उन्हीं कृत है, जीवकृत नहीं है।

## विभिन्न अनुभाग बंध के कारण

**सुहपयडीणं विसोही तिव्वो असुहाणसंकिलेसम्मि।**
**विवरीदो दु जहण्णो अणुभागो सव्वपयडीणं।। (187-1)**

(सुह पयडीणं) शुभ प्रकृतियों का (अणुभागो) अनुभाग (विसोही) विशुद्ध भाव से (असुहाणं) अशुभ प्रकृतियों का (संकिलेसम्मि) संक्लेश भाव से (तिव्वो) तीव्र होता है, (विवरीदो दु) परन्तु इसके विपरीत होने पर (सव्वपयडीणं) सर्व प्रकृतियों का (जहण्णो) जघन्य होता है। फल देने की शक्ति विशेष को अनुभाग कहते हैं। तीव्र धर्मानुराग रूप विशुद्ध भाव से सातावेदनीय आदि शुभ कर्म प्रकृतियों का अनुभाग परम अमृत के समान उत्कृष्ट पड़ता है तथा मिथ्यात्व आदि रूप संक्लेश भाव से असाता वेदनीय आदि अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग हलाहल विष के समान तीव्र पड़ता है तथा जघन्य विशुद्धि से व मध्यम विशुद्धि से शुभ प्रकृतियों का अनुभाग जघन्य या मध्यम पड़ता है अर्थात् गुड़, खांड, शर्करा रूप पड़ता है। वैसे ही जघन्य या मध्यम संक्लेश से अशुभ प्रकृतियों का अनुभाग नीम, कांजीर, विष रूप जघन्य या मध्यम पड़ता है। इस प्रकार मूल-उत्तर प्रकृतियों से रहित निज परमानंदमयी एक स्वभाव रूप तथा सर्व प्रकार उपादेयभूत परमात्मा द्रव्य से भिन्न और त्यागने योग्य सर्व मूलोत्तर प्रकृतियों से जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अनुभाग को अर्थात् कर्म की शक्ति विशेष को जानना चाहिए।

जैसे नवमेघ जल के भूमि संयोग रूप परिणाम के समय अन्य पुद्गल परिणाम स्वयमेव वैचित्र्य को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार आत्मा के शुभाशुभ परिणाम के समय कर्म पुद्गल परिणाम वास्तव में स्वयमेव विचित्रता को प्राप्त होते हैं। वह इस प्रकार है कि-जैसे, जब नया मेघजल भूमि संयोग रूप परिणमित होता है तब अन्य पुद्गल स्वयमेव विचित्रता को प्राप्त हरियाली कुकुरमुत्ता (छत्ता) और इन्द्रगोप (चातुर्मास में उत्पन्न लाल कीड़ा) आदि रूप परिणमित होता है, इसी प्रकार जब यह आत्मा राग-द्वेष के वशीभूत होता हुआ शुभाशुभ भावरूप परिणमित होता है तब अन्य योग द्वारों से प्रविष्ट होते हुए, कर्म पुद्गल स्वयमेव विचित्रता को प्राप्त ज्ञानावरणादि भावरूप

परिणमित होते हैं। इससे (यह निश्चित हुआ कि) कर्मों की विचित्रता (विविधता) का होना पुद्गल स्वभावकृत है, किन्तु आत्मकृत नहीं।

**समीक्षा**–जीव के परिस्पंदन से आकर्षित होकर अनंतानंत पुद्गल परमाणुओं के समूह स्वरूप कार्माण वर्गणाएँ आकर जीव के आत्म-प्रदेश में प्रवेश करती हैं इसको जैन दार्शनिक शब्दावली में आस्रव कहते हैं। जीव के उपयोग (राग, द्वेष, मोह, अध्यवसाय) को निमित्त प्राप्त करके कर्म-वर्गणाएँ जीव के प्रदेशों में संश्लेष रूप से बंध जाती है। इसको जैन दर्शन में कर्मबंध कहते हैं। सामान्य अपेक्षा से कर्म वर्गणाएँ एक होते हुए भी जीव के विभिन्न प्रकार के योग-उपयोग को प्राप्त करके विभिन्न कर्म रूप में परिणमन कर लेती हैं। जैसे-मनुष्य के द्वारा भुक्त भोजन मनुष्य की विभिन्न पाचन क्रियाओं को प्राप्त करके रस, रूधिर, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य, ओज रूप परिणमन कर लेता है, उसी प्रकार कर्म वर्गणाएँ भी ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अंतराय आदि रूप में परिणत हो जाती हैं। जैसे एक प्रकार की भूमि में अंकुरित विभिन्न वृक्ष एक ही प्रकार के जलवायु, सूर्य किरणों को प्राप्त करने पर भी विभिन्न वृक्ष में रसादि में रसादि का परिणमन विभिन्न प्रकार होता है। नीम के वृक्ष को निमित्त पाकर कडुवा, गन्ने को प्राप्त होने पर मीठा, इमली में खट्टा, मिर्ची में चरपरा आदि विभिन्न रस रूप परिणमन कर लेते हैं। तत्त्वार्थ राजवार्तिक में भट्टाकलंक देव स्वामी ने कर्म वर्गणाएँ किस रूप में परिणमन करती हैं उसकी व्याख्या अष्टम अध्याय के चतुर्थ सूत्र में निम्न प्रकार किया है-

**ज्ञानावरणस्याविशेषेऽपि प्रत्यास्रवं मत्यादिविशेषो जलवत् (7)**

ज्ञानावरण रूप से अविशेषता होने पर भी जल के समान प्रत्यास्रव में मत्यादि में विशेषता है। जैसे आकाश से सामान्य रूप से भी गिरा हुआ मेघ का जल पात्र विशेष में पड़कर विभिन्न रस (खट्टा, मधुर, कडुवा आदि) रूप परिणमन कर जाता है उसी प्रकार ज्ञान शक्ति का उपरोध करने से ज्ञानावरण सामान्यतः एक होकर भी अवान्तर शक्ति भेद से मति आवरण, श्रुतावरण आदि भेद रूप परिणमन करता है।

इस प्रकार अन्य कर्मों में भी भेद समझना चाहिए। अर्थात् इतर दर्शनावरण, वेदनीय आदि मूल प्रकृति और चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण आदि उत्तर प्रकृति रूप परिणमन हो जाता है ऐसा समझना चाहिए।

**पुद्गलद्रव्यस्यैकस्यावरण-सुख दुःखादिनिमित्ततत्वानुपपत्तिर्विरोधात् (9)**

**प्रश्न**-पुद्गल द्रव्य जब एक है तो वह आवरण (ज्ञानावरण, दर्शनावरण) सुख-दुःख आदि अनेक कार्यों का निमित्त नहीं हो सकता, क्योंकि एक के अनेक रूप होने में विरोध है? (9)

**न वा तत्स्वाभाव्यादग्नेर्दहिपाकप्रतापप्रकाशसार्मथ्यवत्। (10)**

**उत्तर**-अग्नि के दाह, पाक, प्रताप और प्रकाश का सामर्थ्य के समान पुद्गल में शक्ति विशेष का स्वभाव होने से एक का अनेक रूप होने में कोई विरोध नहीं है क्योंकि इसका स्वभाव ही ऐसा है जैसे एक ही अग्नि में दाह, पाक, प्रताप और प्रकाश का सामर्थ्य विरुद्ध नहीं है, उसी प्रकार एक ही पुद्गल में आवरण, मोहन, सुख, दुःखादि में निमित्तत्त्व होने की शक्ति है इसमें कोई विरोध नहीं है।

इसमें अनैकान्तिकत्व है। एक और अनेक लक्षण वाले द्रव्य के कथंचित् एकपना है और कथंचित् अनेकपना है। जैसे द्रव्यदृष्टि से पुद्गल कथंचित् एक है और अनेक परमाणुओं के स्निग्ध रूक्ष बंध से होने वाली विभिन्न स्कंध पर्यायों की दृष्टि से अनेक है, इसमें कोई विरोध नहीं है। (तत्त्वार्थ वा.अ.8 पृ.458)

**पडपडिहारसिमज्जाहलिचित्तकुलालभंडयारीणं।**

**जह एदेसिं भावा तहवि य कम्मा मुणेयव्वा।।** (गो.सा. कर्मकाण्ड)

(1) पट अर्थात् देवता के मुख के ऊपर का वस्त्र (2) प्रतिहार अर्थात् राजद्वार पर बैठा हुआ ड्योड़ीवान, (3) असि (शहद लपेटी तलवार की धार) (4) शराब (5) काठ का यंत्र-खोड़ा (6) चित्रकार-चितेरा (7) कुंभार (कुम्हार) (8) भंडारी (खजानची)। इन आठों के जैसे-जैसे अपने-अपने कार्य करने के भाव होते हैं उसी तरह क्रम से कर्मों के भी स्वभाव समझना चाहिए।

## मुझे चाहिए लोकोत्तर ज्ञान-भाव-व्यवहार

### (लोक प्रसिद्ध ज्ञान-भाव व्यवहार से परे मुझे चाहिए परम सत्य व आत्म तत्त्व)

**(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)**

कषाय (व) लेश्या से आवेशित है, सामान्य जनों के भाव-व्यवहार।
परम सत्य आध्यात्मिक तथ्य से, नहीं होता उसका कोइ सरोकार।। (1)

क्रोध मान माया लोभ से प्रेरित आहार, भय मैथुन परिग्रह से संचालित।
जन्म जरा मृत्यु रोग शोक पीड़ित, होते भाव-व्यवहार जो मोह मोहित।। (2)

यथा तीव्र निद्रा से पीड़ित जीव, घोर नींद में करते हैं शयन।
तथाहि कषाय आदि में आवेशित, जीव करते हैं भाव व काम।। (3)

क्षुधा से पीड़ित आहार करते, उसके लिए करते बहु विध काम।
भय निवारण हेतु अस्त्र-शस्त्र चाहिए, युद्ध व हत्या आदि काम।। (4)

काम से पीड़ित मैथुन करते, उसी हेतु करते हैं विभिन्न काम।
विवाह या बलात्कार वेश्यागमन, कुटुम्ब पालन व धनार्जन।। (5)

ऐसी प्रवृत्ति तो कीट-पतंग में भी, होती नहीं यह उच्च प्रवृत्ति।
उच्च आध्यात्मिक प्रवृत्ति हेतु, त्यजनीय है नीच प्रवृत्ति।। (6)

इनके भाव-व्यवहार कथन से, नहीं होता है आत्म उत्थान।
ऐसी प्रवृत्तिओं से तो होता है आत्म पतन।। (7)

यह सब काम कर्मफल चेतना या, कर्म चेतना से होता है।
ज्ञान चेतना इससे परे होती, जिसमें होती आत्म विशुद्धि।। (8)

आत्म विशुद्धि बिन सभी के ज्ञान, आध्यात्मिक विकास हेतु हेय हैं।
आत्म विकास हेतु संपूर्ण ज्ञान, मेरे लिए बहुत (ही) उपादेय है।। (9)

भले सभी से मैं शिक्षा लेता हूँ, सुगुणी व दुर्गुणी सभी से।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा पक्षपात आदि, नहीं करूँ मैं कभी भी किसी से।। (10)

तथापि मुझे लौकिक जनों से भी, परे चाहिए परम सत्य।
भौतिक वैज्ञानिक व दार्शनिक परे, मुझे चाहिए स्व-आत्म तत्त्व।। (11)

इसी हेतु ही तीन ज्ञानधारी, तीर्थंकर भी बनते है श्रमण।
'कनकनन्दी' भी आत्मोपलब्धि, हेतु बना है मुमुक्षु श्रमण।। (12)

नन्दौड़, दिनांक 12.12.2015, रात्रि 9.10, 9.45 व 1.03

**सन्दर्भ-**

## ज्ञान, कर्म एवं कर्मफल चेतना

**परिणमदि चेदणाए आदा पुण चेदणा तिधाभिमदा।**
**सा पुण णाणे कम्मे फलाम्मि वा कम्मणो भणिदा।। (123)**

The soul develops into (or with) sentiency which, in turn, is said to be of three kinds, say with regard to knowledge, karma and the fruit of karma.

आगे कहते हैं कि जिस परिणाम से आत्मा परिणमन करता है, वह परिणाम क्या है-(आदा) आत्मा (चेदणाए) चेतना के स्वभाव रूप से (परिणमदि) परिणमन करता है (पुण) तथा (चेदणा तिधा अभिमदा) वह चेतना तीन प्रकार मानी गई है। (पुण) अर्थात् (सा) वह चेतना (णाणे) ज्ञान के संबंध में (कम्मे) कर्म या कार्य के संबंध में (वा कम्मणो फलम्मि) तथा कर्मों के फल में (भणिदा) कही गई है। हर एक आत्मा चेतना से परिणमन करता रहता है अर्थात् जो कोई भी आत्मा का शुद्ध या अशुद्ध परिणाम है वह सर्व ही परिणाम चेतना को नहीं छोड़ता है वह चेतना जब ज्ञान को विषय करती है अर्थात् ज्ञान की परिणति में वर्त्तन करती है तब उसको चेतना ज्ञान हैं। जब वह चेतना किसी कर्म के करने में उपयुक्त है तब उसे कर्म चेतना और जब वह कर्मों के फल की तरह परिणमन कर रही है तब उसको कर्मफल चेतना कहते हैं। इस तरह चेतना तीन प्रकार की होती हैं।

**समीक्षा**-इस गाथा से आचार्यश्री जीव का जो असाधारण भाव चेतना है उसका विशेष रूप से भेद पुरस्सर वर्णन कर रहे हैं। इसके पहले भी जीव की सिद्धि तथा उसके स्वरूप का वर्णन विभिन्न दृष्टिकोण से किया है। यहाँ से पुनः चेतना गुण को विशेष गुण इसलिये कह रहे हैं कि चेतना ही जीव का असाधारण भाव है। इसके कारण ही यह अन्य द्रव्यों से पृथक् होता है इस गुण के कारण ही जीव संसार अवस्था में सुख-दुःख का वेदन करता है और मोक्ष अवस्था में सुख का वेदन करता है। इस गुण के कारण ही जीव अन्य समस्त द्रव्यों से श्रेष्ठ है, पूजनीय है। इसलिये इसका विशेष कथन यहाँ से प्रारंभ कर रहे हैं। पंचाध्यायी में भी कहा है-

**जीवसिद्धिः सती साध्या सिद्धा साधीयसी पुरा।**
**तत्सिद्धलक्षणं वक्ष्ये साक्षात्तल्लब्धिसिद्धये।। (191)** पृ.320

पहले जीव की सिद्धि कह चुके हैं, इसलिये प्रसिद्ध है उसी को पुनः साध्य बनाते हैं अर्थात् सिद्ध करते हैं। जीव के ठीक-ठीक स्वरूप की प्राप्ति हो जाय, इसलिये उसका सिद्ध (प्रसिद्ध) लक्षण कहते हैं।

**स्वरूपं चेतना जन्तोः सामान्यात्सदेकधा।**
**सद्विशेषादपि द्वेधा क्रमात्सा नाऽक्रमादिह।। (192)**

जीव का स्वरूप चेतना है, वह चेतना सामान्य रीति से एक प्रकार है क्योंकि सामान्य रीति से सत्ता एक ही प्रकार है तथा सत् विशेष की अपेक्षा से वह चेतना दो प्रकार है। परंतु उसके दोनों भेद क्रम से होते हैं एक साथ नहीं होते हैं।

**एका स्याच्चेतना शुद्धा स्यादशुद्धा परा ततः।**
**शुद्धा स्यादात्मनस्तत्त्वमस्त्यशुद्धाऽऽत्मकर्मजा।। (193)**

एक शुद्ध चेतना और दूसरी अशुद्ध चेतना है। शुद्ध चेतना आत्मा का निज रूप है और अशुद्ध चेतना आत्मा और कर्म के निमित्त से होती है।

**एकधा चेतना शुद्धा शुद्धस्यैकविधत्त्वतः।**
**शुद्धाशुद्धोपलब्धित्त्वाज्ज्ञान त्त्वाज्ज्ञानचेतना।। (194)**

शुद्ध चेतना एक प्रकार है क्योंकि शुद्ध एक प्रकार ही है। शुद्ध चेतना में शुद्धता की उपलब्धि होती है इसलिये वह शुद्ध है और वह शुद्धोपलब्धि ज्ञान रूप है इसलिये उसे ज्ञान चेतना कहते हैं।

**अशुद्धा चेतना द्वेधा तद्यथा कर्मचेतना।**
**चेतनत्वात्फलस्यास्य स्यात्कर्मफलचेतना।। (195)**

अशुद्ध चेतना दो प्रकार है। एक कर्म चेतना, दूसरी कर्मफल चेतना। कर्मफल चेतना में फल भोगने की मुख्यता है।

सामान्यतः जीव की जो अनुभूति, अनुभव, उपलब्धि, वेदना की शक्ति है उसे चेतना कहते हैं। यह चेतना कर्म से युक्त एवं कर्म से रहित होने के कारण विभिन्न रूप परिणमन कर लेती है। जिस प्रकार आकाश एक होते हुए भी लोकाकाश, अलोकाकाश, घटाकाश, पटाकाश आदि रूप में बाह्य निमित्त के कारण भेद पड़ जाता है उसी प्रकार चेतना भी अनेक रूप में परिणमन करती है। परंतु यहाँ मुख्यतः चेतना के 3 भेद किये गये हैं (1) ज्ञान चेतना, (2) कर्म चेतना, (3) कर्मफल चेतना। मुख्य रूप से सिद्ध भगवान् शुद्ध ज्ञान चेतना का अनुभव करते हैं। संपूर्ण स्थावर जीव अर्थात् पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव कर्मफल चेतना का अनुभव करते हैं। द्वीन्द्रियादि त्रस जीव कर्म चेतना तथा कर्मफल चेतना का अनुभव करते हैं। कुंदकुंद देव ने पंचास्तिकाय में कहा भी है-

**कम्माणं फलमेक्को एक्को कज्जं तु णाणमध एक्को।**
**चेदयदि जीवरासी चेदगभावेण तिविहेण।। (38)** पृ.135

कोई चेतयिता अर्थात् आत्मा तो, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है और जिसका प्रभाव (शक्ति) अति प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंद गया है ऐसे चेतन स्वभाव द्वारा सुख-दुःख रूप 'कर्मफल' को ही प्रधानतः चेतते हैं, क्योंकि उनका अति प्रकृष्ट वीर्यांतराय से कार्य करने का (कर्म चेतना रूप परिणमित होने का) सामर्थ्य नष्ट हो गया है।

अन्य चेतयिता अर्थात् आत्मा, जो अति प्रकृष्ट मोह से मलिन है और जिसका प्रभाव प्रकृष्ट ज्ञानावरण से मुंद गया है ऐसे चेतन स्वभाव द्वारा भले ही सुख-दुःख रूप कर्मफल के अनुभव से मिश्रित रूप से भी-'कार्य' (कर्म चेतना) को ही प्रधानताः चेतते हैं, क्योंकि उन्होंने अल्प वीर्यांतराय के क्षयोपशम से कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त किया है।

अन्य चेतयिता, अर्थात् आत्मा जो, समस्त वीर्यांतराय के क्षय से अनंत वीर्य को प्राप्त हैं, सकल मोह कलंक धुल जाने के तथा समस्त ज्ञानावरण के विनाश के कारण समस्त प्रभाव अत्यंत विकसित हो जाने से चेतक स्वभाव द्वारा, कर्मफल निर्जरित हो जाने के और अत्यंत कृतकृत्यपना हो जाने के कारण अपने से अभिन्न स्वाभाविक सुख रूप ज्ञान को ही चेतते (अनुभव करते) हैं।

निर्मल शुद्ध आत्मा की अनुभूति को न पाकर अशुद्ध भावों से बाँधा जो गाढ़ मोहनीय कर्म उसके उदय से प्राप्त जो अत्यंत मलीन चेतना उसी से जिनके आत्मा की शक्ति ढ़क रही है ऐसा एक जीव समुदाय कर्मों के फलों को ही अनुभव करता है। दूसरी एक जीवराशि उसी ही मलीन चेतना से कुछ शक्ति को पाकर इच्छापूर्वक इष्ट या अनिष्ट के भेदरूप कर्म या कार्य का अनुभव करती है तथा एक जीव समुदाय विशुद्ध शुद्धात्मा की अनुभूति रूप भावना से कर्म कलंक को नाश करते हुए अपने शुद्ध चेतना के भाव से केवलज्ञान को अनुभव करता है। इस तरह यह चेतना तीन प्रकार की है-(1) कर्मफल चेतना (2) कर्म चेतना (3) ज्ञान चेतना।

**सव्वे खलु कम्मफलं थावरकाया तसा हि कज्जजुदं।**
**पाणित्तमदिक्कंता णाणं विन्दन्ति ते जीवा।। (39)**

(सर्वे स्थावरकायाः) सर्व स्थावर जीव समूह (खलु) वास्तव में (कर्मफल) कर्मफल को वेदते हैं, (त्रसा) त्रस (हि) वास्तव में (कार्ययुतम्) कार्य (कर्मचेतना) सहित कर्मफल को वेदते हैं और (प्राणित्वमतिक्रान्ताः) जो प्राणित्व का (प्राण का)

अतिक्रम कर गये हैं (ते जीवाः) वे जीव ज्ञान को (विदंन्ति) वेदते हैं।

चेतता है, अनुभव करता है, उपलब्ध करता है और वेदता है-ये एकार्थ हैं क्योंकि चेतना, अनुभूति, उपलब्धि और वेदना का एक अर्थ है। वहाँ स्थावर कर्मफल को चेतते हैं, त्रस कार्य (कर्म चेतना) को चेतते हैं, केवलज्ञानी ज्ञान को चेतते हैं।

सर्व ही प्रसिद्ध पृथ्वीकायिक, अपकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक स्थावर एकेन्द्रिय जीव अप्रगट सुख-दुःख का अनुभव रूप शुभ या अशुभ कर्म के फल को अनुभव करते हैं और द्वीन्द्रियादि त्रस जीव निर्विकार पर आनंदमयी एक स्वभावधारी आत्मा के सुख को नहीं अनुभव करते हुए उस कर्मफल को भी अनुभव करते हैं साथ में विशेष राग-द्वेष रूप कार्य की चेतना भी रखते हैं तथा जो जीव विशेष शुद्धात्मानुभव की भावना से उत्पन्न जो परमानंदमयी एक सुखामृत रूप समरसी भाव उसके बल से इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छवास इन दश प्राणों का उल्लंघन कर गये हैं ऐसे सिद्ध परमात्मा सो मात्र केवलज्ञान को अनुभव करते हैं।

स्थावरकाय जीव की चेतना शक्ति अल्प विकसित होने के कारण, वीर्यांतराय कर्म का क्षयोपशम कम होने के कारण शक्ति की कमी होने से, ज्ञानावरणीय कर्म का तीव्रोदय होने के कारण ज्ञान कम होने से तथा केवल स्पर्श इन्द्रिय होने से वे पूर्वोपार्जित कर्म को केवल विवश होकर भोगने के लिए बाध्य होते हैं। इसलिए स्थावर जीव बाह्य सुख-दुःख से, प्रतिकूल वातावरण से स्वयं को बचाने के लिए अधिक सक्रिय नहीं हो पाता है। इसलिए इनमें केवल पूर्वोपार्जित कर्म को भोगने रूप प्रधानतः (मुख्यतः) कर्मफल चेतना है। अमृतचंद्र सूरी ने पंचास्तिकाय की 38 नंबर गाथा की टीका में जो स्थावर जीवों के लिए ''**सुख-दुःख रूपं कर्मफलमेव प्राधान्येनं चेतयंते**'' यह विशेषण दिया है वह विचारणीय है। भले स्थावर जीव शक्ति की कमी से सुख-दुःख को विवश होकर भोगता है तथापि कुछ प्रतिक्रिया भी करता है। जैसे-जिधर पानी होता है उधर वृक्ष की जड़ फैलती है, जिधर प्रकाश होता है उधर वृक्ष की शाखाएँ बढ़ती हैं। लाजवन्ती को छूने पर लाजवन्ती मुरझा जाती है। योग्य जलवायु से वृक्ष पल्लवित होता है और विपरीत वातावरण से वृक्ष मुरझा जाता है। मौलश्री वृक्ष सुंदर स्त्री को देखकर काम चेतना से युक्त हो जाता है। अभी

वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि यदि कोई वृक्ष को मारने के लिए जाता है तो वह भयभीत हो जाता है, पत्ते कांति रहित हो मुरझाने लगते हैं और कोई पानी देने जाता है तो वृक्ष प्रसन्न हो जाते हैं। संगीत सुनने से वृक्ष अधिक पुष्प-फलादि देते हैं और प्रदूषित वातावरण में वृक्ष कम विकसित होते हैं। इसी प्रकार अन्य स्थावर जीवों में भी कुछ प्रतिक्रियाएँ होती हैं। इसलिए स्थावर जीव में मुख्यतः कर्मफल चेतना होते हुए भी गौणरूप से कर्म चेतना भी है।

त्रस जीवों के वीर्यांतराय कर्म के कुछ क्षयोपशम से स्थावर जीव की अपेक्षा कुछ शक्ति अधिक होने से इनके कर्मफल चेतना के साथ-साथ कर्म चेतना भी पायी जाती हैं। इसलिए त्रस जीव में स्थावर जीव की अपेक्षा कुछ सक्रियता अधिक है। त्रस नामकर्म के उदय से तथा ज्ञानावरणी के कुछ क्षयोपशम से स्थावर जीवों से इनमें कुछ अधिक ज्ञान रहता है। आत्म रक्षा के लिए इधर-उधर भाग सकते हैं इसलिए ये कर्मफल चेतना (अनुभव) के साथ-साथ कर्म चेतना से भी युक्त होते हैं।

जिन्होंने समस्त वीर्यांतराय कर्म के क्षय से अनंत वीर्य को प्राप्त कर लिया है तथा समस्त ज्ञानावरणी आदि घाति कर्म एवं अघाति कर्म के क्षय से सिद्ध परमात्मा बन गये हैं ऐसे जीव ज्ञान चेतना का वेदन करते हैं।

पंचास्तिकाय की 39 नं. गाथा में जो ''**पाणित्तमदिक्कंता णाणं विदंति ते जीवा**'' का अर्थ करते हुए आचार्य जयसेन स्वामी ने कहा है-''**दशविध प्राणत्वमतिक्रांताः सिद्ध जीवास्ते केवलज्ञानं विदंति**'' अर्थात् जो पाँच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास प्राण को अतिक्रांत (उल्लंघन) कर गये हैं ऐसे सिद्ध परमात्मा केवलज्ञान चेतना का अनुभव करते हैं।

**उपयोगविवक्षायां हेतुरस्यास्ति तद्यथा।**

**अस्ति पंचेन्द्रियं कर्म कर्मस्यान्मानसं तथा।। (294)** पृ.348

जितना-जितना आवरण हटता है उतना-उतना ज्ञान प्रकट होता है यह ऊपर कह चुके हैं, परन्तु इतना होने पर भी वस्तु का ज्ञान नहीं होता, आत्मा के परिणाम जिस तरफ उन्मुख ऋजु होते हैं उसी का ज्ञान होता है इसी का नाम उपयोग है। इसी उपयोग की विवक्षा में पंचेन्द्रिय नाम कर्म और मानस कर्म ये दोनों हेतु हैं।

ज्ञान चेतना सिद्ध अवस्था में है परन्तु सम्यग्दर्शन होने के बाद ज्ञान चेतना प्रारंभ हो जाती है और यह चेतना उत्तरोत्तर विशुद्ध से विशुद्धतर होते-होते सिद्ध

अवस्था में परम विशुद्ध हो जाती है। जिस प्रकार सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सिद्ध अवस्था तक है, सिद्ध अवस्था में केवली के सम्यग्दर्शन परम विशुद्ध है जिसको परमावगाढ़ सम्यग्दर्शन कहते हैं परन्तु यह सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से उपशम, क्षय या क्षयोपशम रूप से प्रारंभ हो जाता है। यह विषय अगली 124 नं. गाथा से भी कुछ स्पष्ट हो जाता है। यथा ''णाणं अट्ठवियप्पं'' ''मत्यादि भेदेनाष्टविकल्पं भवति'' ज्ञान मति आदि के भेद से आठ प्रकार का है इसको पाठान्तर में कहा गया कि पदार्थों को जानने में जो विकल्प है वह ज्ञान ज्ञान-चेतना है। स्वयं आचार्यश्री उपर्युक्त विषय आगे स्पष्ट करने वाले हैं। इसलिये यहाँ विशेष वर्णन नहीं कर रहे।

## तीनों चेतना का लक्षण एवं फल

**णाणं अट्ठवियप्पो कम्मं जीवेण जं समारद्धं।**
**तमणेगविदं भणिदं फलं त्ति सोक्खं व दुक्खं वा।। (124)**

Knowledge is the comprehension of the objectivity (exactly as it is): whatever is done by the soul is karma, which is of many kinds; the fruit of karma is either happiness of misery.

(णाणं अट्ठवियप्पं) ज्ञानमति आदि के भेद से आठ प्रकार का है अथवा (अट्ठवियप्पो) पदार्थों के जानने में समर्थ जो विकल्प है (णाणं) वह ज्ञान या ज्ञान चेतना है। (जीवेण जं समारद्धं कम्मं) जीव के द्वारा जो प्रारंभ किया हुआ कर्म है (तमणेगविधं भणिदं) वह अनेक प्रकार का कहा गया है-इस कर्म की चेतना सो कर्म चेतना है (वा सुक्खं व दुक्खं फलत्ति) तथा सुख या दुःख रूप फल में चेतना सो कर्मफल चेतना है।

ज्ञान को अर्थ का विकल्प कहते हैं-जिसका प्रयोजन यह है कि ज्ञान अपने और पर के आकार को झलकाने वाला दर्पण के समान स्व-पर पदार्थों को जानने में समर्थ है। वह ज्ञान इस तरह जानता है कि अनंतज्ञान सुखादि रूप में परमात्मा पदार्थ हूँ तथा रागादि आस्रव को आदि लेकर सर्व पुद्गलादि द्रव्य मुझसे भिन्न हैं।

इसी अर्थ विकल्प को ज्ञान चेतना कहते हैं। इस जीव ने अपनी बुद्धिपूर्वक मन वचन काय के व्यापार रूप से जो कुछ करना प्रारंभ किया हो उसको कर्म कहते हैं। यही कर्म चेतना है। सो कर्म चेतना शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग के भेद से तीन प्रकार की कही गई है। सुख तथा दुःख को कर्म का फल कहते हैं इसको

अनुभव करना सो कर्मफल चेतना है। विषयानुराग रूप जो अशुभोपयोग लक्षण कर्म है उसका फल अति आकुलता को पैदा करने वाला नारक आदि का दुःख है। धर्मानुराग रूप जो शुभोपयोग लक्षण कर्म है इसका फल चक्रवर्ती आदि के पंचेन्द्रियों के भोगों को भोगना है। यद्यपि इसको अशुद्ध निश्चयनय से सुख कहते हैं तथापि यह आकुलता को उत्पन्न करने वाला होने से शुद्ध निश्चयनय से दुःख ही है और जो रागादि रहित शुद्धोपयोग में परिणमन रूप कर्म है उसका फल अनाकुलता को पैदा करने वाला परमानंदमई एक रूप सुखामृत का स्वाद है। इस तरह ज्ञान चेतना कर्म चेतना और कर्मफल चेतना का स्वरूप जानना चाहिए।

**समीक्षा**–इस गाथा में आचार्यश्री ने तीनों चेतना की परिभाषा दी है। पूर्व गाथा में सामान्य रूप से चेतना का वर्णन किया था। मति ज्ञानादि आठ प्रकार के ज्ञान या पदार्थ को जानने में जो विकल्प रूप ज्ञान है उसको ज्ञान चेतना कहते हैं। अतः आध्यात्मिक दृष्टि से भेद-विज्ञान को ज्ञान चेतना कहते हैं। बुद्धिपूर्वक मन, वचन, काय से जो जीव करता है उसे कर्म या कर्म चेतना कहते हैं। यह कर्म चेतना अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग के भेद से तीन प्रकार की है। अशुभ भाव सहित जो उपयोग है उसको अशुभोपयोग कहते हैं। शुभ भाव से युक्त शुभोपयोग है और शुद्ध भाव से युक्त शुद्धोपयोग है। पूर्वोपार्जित पुण्य या पाप के कारण जो सुख तथा दुःख प्राप्त होता है उसका अनुभव करना कर्मफल चेतना है। अशुभोपयोग से केवल दुःख ही दुःख मिलता है और शुभोपयोग से इन्द्रिय जनित सांसारिक सुख मिलता है तथापि आध्यात्मिक दृष्टि से यह इन्द्रिय जनित सुख-दुःख स्वरूप हैं क्योंकि यह इन्द्रिय जनित सुख कर्मोदय से प्राप्त होने के कारण, भोग करते वक्त आसक्ति व अतृप्ति के कारण, नवीन कर्मबंध के कारण होने से इन्द्रिय जनित सुख-दुःख रूप ही है।

## तीनों चेतना आत्म स्वरूप है

**अप्पा परिणामप्पा परिणामो णाणकम्मफलभावी।**
**तम्हा णाणं कम्मं फलं च आदा मुणेदव्वो।। (125)**

The nature of the soul is development : this development is with reference to knowledge, karma and the fruit, therefore, it

should be understood that knowledge, karma and the fruit constitute the soul.

(अप्पा परिणामप्पा) आत्मा परिणाम-स्वभावी है। (परिणामो णाणकम्मफल भावी) परिणाम ज्ञानरूप कर्मरूप व कर्म्मफल रूप हो जाता है (तम्हा) आत्मा (णाणं कम्मं च फलं) ज्ञानरूप कर्मरूप व कर्मफलरूप (मुणेदव्वो) जानना चाहिए।

आत्मा परिणमन स्वभाव है, यह बात तो पहले ही ''**परिणामो सयमादा**'' इस गाथा में कही जा चुकी है। उसी परिणमन स्वभाव में यह शक्ति है कि आत्मा का भाव ज्ञान चेतना रूप, कर्म चेतना रूप व कर्मफल चेतना रूप हो जावे। इसलिये ज्ञान, कर्म, कर्मफल चेतना इन तीन प्रकार चेतना रूप अभेद नय से आत्मा को ही जानना चाहिए। इस कथन से यह अभिप्राय प्रगट किया गया है कि यह आत्मा तीन प्रकार चेतना के परिणामों से परिणमन करता हुआ निश्चय रत्नत्रयमयी शुद्ध परिणमन से मोक्ष का साधन करता है तथा शुभ और अशुभ परिणामों से बंध को साधता है।

**समीक्षा**-जिस प्रकार इक्षु रस ही परिणमन करता हुआ गुड़, शक्कर, मिश्री आदि में परिणमन करता है। उसी प्रकार आत्मा में जो परिणमन शक्ति है उससे ज्ञान चेतना, कर्म चेतना और कर्मफल रूप में परिणमन कर लेता है। यदि आत्मा स्वयं शक्ति के कारण तीनों चेतना रूप परिणमन नहीं करता तो बाह्य निमित्तादि के कारण भी यह तीन प्रकार की चेतना नहीं होती। क्योंकि चेतनमय आत्मा को छोड़कर अन्य किसी द्रव्य में चेतयिता गुण नहीं है। भले कर्म चेतना, कर्मफल चेतना के लिए कर्मोदय की आवश्यकता है तथापि चेतना के बिना कर्म चेतना और कर्मफल चेतना नहीं हो सकती थी। जिस प्रकार अग्नि, हथौड़ी, कुम्हारादि बाह्य निमित्त के द्वारा लोहा कील, शब्बल, रेल की पटरी परिणमन करती है उसी प्रकार आत्मा ही तीनों चेतना रूप में परिणमन करता है। पंचाध्यायी में कहा भी है-

**अद्वैतेपि त्रिधा प्रोक्ता चेतना चैवमागमात्।**
**यथोपलक्षितो जीवः सार्थनामास्ति नान्यथा।। (942)** पञ्चाध्यायी, पृ.527

यद्यपि चेतना एक है तथापि आगम के अनुसार उस चेतना के तीन भेद हैं उस चेतना से विशिष्ट जीव ही यथार्थ नाम धारी कहलाता है अन्यथा नहीं।

प्रकारान्तर से इष्टोपदेश में पूज्यपाद स्वामी ने कहा है कि प्रत्येक जीव में बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा है अर्थात् आत्मा ही तीनों रूप में परिणमन करता है।

बहिरात्मा एकांततः हेय एवं त्यजनीय है। परमात्मा एकांततः उपादेय एवं ग्रहणीय है। अंतरात्मा प्राथमिक अवस्था में ग्रहणीय है, क्योंकि अंतरात्मा के माध्यम से बहिरात्मा को त्यागकर परमात्मा को प्राप्त किया जाता है, परंतु जब परम अवस्था प्राप्त हो जाती है तब अंतरात्मपना स्वयं छूट जाता है इसलिये यह प्राथमिक अवस्था में ग्रहणीय होते हुए भी सर्वथा ग्रहणीय नहीं है। यथा-

**बहिरन्तः परश्चेति त्रिधात्मा सर्वदेहिषु।**
**उपयात्तत्र परमं मध्योपायाद्बहिस्त्यजेत्।। (4)** समाधितंत्र पृ.9

समस्त शरीरधारी जीवों में पृथक्-पृथक् रूप से चेतन आत्मा बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा इस तरह तीन प्रकार का है उनमें से अंतरात्मा के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करना चाहिए और बहिरात्मा का त्याग कर देना चाहिए।

**बहिरात्मा शरीरादौ जातात्मभ्रान्तिरान्तरः।**
**चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्मातिनिर्मलः।। (5)** पृ.12

शरीर, पुत्र, स्त्री, धन, पशु, मकान आदि अन्य पदार्थों में जिसे अपने आत्मा का या अपनेपन का भ्रम होता है वह बहिरात्मा जीव है। जिसको चित्त, राग-द्वेष आदि दोषों तथा आत्मा के विषय में भ्रम नहीं रहा यानि जो उन्हें पृथक्-पृथक् ठीक तरह जानता है, वह अंतरात्मा है। जो मिथ्यात्व अज्ञान और राग आदि दोषों से सर्वथा छूटकर अत्यंत निर्मल हो गया है, वह (परमात्मा) है।

## भेद विज्ञान की भावना का फल शुद्धात्मोपलब्धि

**कत्ता करणं कम्मं फलं च अप्पत्ति णिच्छिदो समणो।**
**परिणमदि णेव अण्णं जदि अप्पाणं लहदि सुद्धं।। (126)**

When the Sramana is convinced that the soul itself is the agent, means, action, and the fruit, and if he does not develop anything (else as passions etc.), he realizes the pure self.

(कत्ता, करणं, कम्मफलं, च अप्प त्ति) कर्त्ता, करण, कर्म तथा फल आत्मा ही है, ऐसा (णिच्छिदो) निश्चय करने वाला (समणो) श्रमण या मुनि (जदि) यदि (अण्णं) अन्य रूप (णेव परिणमदि) नहीं परिणमन करता है तो (सुद्धं अप्पाणं लहदि) शुद्ध आत्मिक स्वरूप को पाता है।

## भाव (लेश्या) के सामान्य भेद

**किण्हा णीला काऊ तेऊ पम्मा य सुक्क लेस्सा य।**

**लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण।।493।।** जीवकाण्ड

कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोल लेश्या, पद्म लेश्या, तेजो लेश्या, शुक्ल लेश्या ये छह ही लेश्याओं के नाम नियमित हैं। यहाँ एवकार (ही) से ही नियम का ज्ञान हो जाने से पुनः नियम शब्द का ग्रहण निरर्थक ही है। अतः वह नैगमनय से लेश्या छह हैं और पर्यायार्थिक नय से असंख्यात लोक हैं, यह आचार्य के अभिप्राय को सूचित करता है।

लेश्या सामान्यतः एक होते हुए भी विशेष छः प्रकार होती है और भी सूक्ष्म विवेचन करने पर सहस्त्र, दस सहस्त्र, करोड़, 10 करोड़, संख्यात, असंख्यात, भेद-प्रभेद हो जाते हैं। जैसे-वर्ण सामान्यतः एक होते हुए भी विशेषतः 5 प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर संख्यात, असंख्यात भेद हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप-सफेद वर्ण को लीजिये। दूध, रुई, कपास, कागज, अस्थि, चाँदी आदि सफेद होते हुए भी सफेद में कुछ अंतर लक्षित होता है। इसी प्रकार प्रत्येक लेश्या सामान्यतः एक होने पर भी उसके अंतर भेद अनेक लक्षित होते हैं। जैसे एक अस्वस्त्र (पीपल) वृक्ष के लक्षावधि पत्र होते हैं उनके सामान्यतः पत्र अण्डाकार वृत्त आकार सहित लंबा नुकीला अंश होते हुए भी अनेक पत्र में सूक्ष्म अंतर है। एक पत्र दूसरे पत्र के समान नहीं होता है, इसी प्रकार एक कृष्ण लेश्याधारी जीव के परिणाम में दूसरे कृष्ण लेश्याधारी जीव के परिणाम से वैमनस्यता रहती है।

## भावों (लेश्याओं) का परिणाम

**लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठा कसायगा होंति।**

**तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा।।499।।**

कषायों के अनुभाग रूप उदय स्थान असंख्यात लोक मात्र होते हैं। उनमें यथायोग्य असंख्यात लोक से भाग देने पर बहुभाग प्रमाण संक्लेश स्थान हैं, वे भी असंख्यात लोक प्रमाण ही हैं, और शेष एक भाग प्रमाण विशुद्धि स्थान हैं, वे भी असंख्यात लोक मात्र हैं। संक्लेश स्थान तो अशुभ लेश्याओं के स्थान हैं और विशुद्धि स्थान शुद्ध लेश्याओं के स्थान हैं।

संसार में उत्तम वस्तु स्वभावतः कम होती है एवं निकृष्ट वस्तु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। जैसे रत्न, सोना आदि कम मात्रा में पाये जतो हैं किन्तु मिट्टी, पत्थर अधिक मात्रा में उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार पवित्र, विशुद्ध, उदार मनोभाव कम मात्रा में पाया जाता है एवं कुत्सित, अपवित्र, मनोभाव प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कषायों के अनुभाग रूप उदय स्थान असंख्यात लोक मात्र होने के कारण लेश्याओं का स्थान भी असंख्यात लोक मात्र होता है। असंख्यात लोक अर्थात् एक लोक में प्रदेश असंख्यात होते हैं। इसी प्रकार असंख्यात लोक में जितने प्रदेश है उतने को असंख्यात लोक कहते हैं। यदि सामान्य गणित में कहा जाए तो असंख्यात x असंख्यात = असंख्यात$^2$ होता है। असंख्यात लोक प्रमाण संख्या को 1000 एवं यथायोग्य असंख्यात लोक को 10 मानने पर संक्लेश एवं विशुद्ध स्थान निम्न प्रकार आयेगा-

सम्पूर्ण लेश्या स्थान=असंख्यात लोक=1000

यथायोग्य असंख्यात लोक=10

संक्लेश स्थान=सर्वस्थान-एक भाग

विशुद्धि स्थान=1 भाग

$$\text{संक्लेश स्थान}=\frac{\text{असंख्यात लोक}}{\text{यथायोग्य असंख्यात लोक}}=\frac{1000}{10}=100 \text{ एक भाग}$$

बहुभाग=1000-100=900

विशुद्धि स्थान=1 भाग=100

उपरोक्त गणित से सिद्ध होता है कि विशुद्ध परिणाम अत्यंत कम होने के कारण दुर्लभ एवं मूल्यवान् है। संक्लेश परिणाम प्रचुर एवं सुलभ के साथ-साथ मूल्यहीन भी है, यह अनुभव गम्य है। परन्तु विशुद्ध विचारधारा पुरुषार्थ करने पर भी मन में अति कठिनता से संचार करती है। संसार में मलिन विचारधाराओं के जीव यत्र-तत्र प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं किन्तु विशुद्धि विचारधारा वाले जीव विरल मात्रा में पाये जाते हैं।

**तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा।**

**मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया पत्तेयं।।500।।** जीवकाण्ड पृ. 701

पहले कहे असंख्यात लोक के बहुभाग मात्र अशुभ लेश्या संबंधी स्थान कृष्ण, नील, कापोत के भेद से 3 प्रकार के हैं। उन सामान्य अशुभ लेश्या संबंधी स्थानों में यथायोग्य असंख्यात लोक में भाग देने पर बहुभाग प्रमाण कृष्ण लेश्या

संबंधी तीव्रतम कषाय रूप संक्लेश स्थान हं। शेष रहे एक भाग में पुनः असंख्यात लोक से भाग देने पर बहुभाग मात्र नील लेश्या संबंधी तीव्रतर संक्लेश स्थान है। शेष रहे एक प्रमाण कापोत लेश्या संबंधी तीव्र संक्लेश स्थान है। पहले कषायों के उदय स्थानों में असंख्यात लोक से भाग देकर जो एक भाग प्रमाण शुभ लेश्या संबंधी स्थान कहे थे वे तेज, पद्म और शुक्ल के भेद से 3 प्रकार के हैं। उनमें असंख्यात लोक से भाग देकर बहुभाग प्रमाण तेजो लेश्या संबंधी मंद संक्लेश स्थान हैं। शेष बचे एक भाग में पुनः असंख्यात लोक से भाग देकर बहुभाग प्रमाण पद्म लेश्या संबंधी मंदतम संक्लेश स्थान है। शेष रहे एक भाग प्रमाण शुक्ल लेश्या संबंधी मंदतम संक्लेश स्थान हैं। इन कृष्ण लेश्या आदि संबंधी 6 स्थानों में से प्रत्येक में अशुभ में तो उत्कृष्ट से जघन्य पर्यंत और शुभ लेश्याओं में से जघन्य से उत्कृष्ट पर्यंत असंख्यात लोक मात्र षट्स्थान पतित हानि-वृद्धि स्थान नियम से होते हैं।

## परिणाम में परिणमन

**असुहाणं वरमज्झिमअंवरसे किण्हणीलकाउतिए।**
**परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किलेसस्स।।501।।**

यदि जीव के संक्लेश परिणामों में हानि होती है तो वह अशुभ, कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओं के उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य अंशों में क्रम से परिणमन करता है अर्थात् उस लेश्या के उत्कृष्ट अंश से मध्यम में और मध्यम से जघन्य रूप परिणमन करता है।

**काऊ णीलं किण्हं परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा।**
**एवं किलेसहाणीवड्ढीदो होदि असुहत्तियं।।502।।**

तथा संक्लेश परिणामों में वृद्धि होने से कापोत, नील और कृष्ण लेश्या रूप से परिणमन करता है। इस प्रकार संक्लेश परिणामों में हानि, वृद्धि होने से तीन अशुभ लेश्या रूप से परिणमन करता है।

**तेऊ पम्मे सुक्के सुहाणमवरादि असंगे आपा।**
**सुद्धिस्स य बड्ढीदो हाणीदो अण्णहा होदि।।503।।**

शुभ तेज, पद्म और शुक्ल लेश्याओं के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अंशों में आत्मा विशुद्धि की वृद्धि से परिणमन करता है और विशुद्धि की हानि से अन्यथा अर्थात् शुक्ल

लेश्या के उत्कृष्ट अंश से तेजो लेश्या के जघन्य अंश तक परिणाम करता है।

केवल ज्ञान के अनन्तर भाव में चंचलता के अभाव में किसी प्रकार भी परिणमन नहीं होता है। उस समय में अपरिणत दशा प्रकट होती है। उसके नीचे की भूमिका में भाव की अशुद्धता एवं चंचलता के कारण प्रति समय हीयमान एवं वर्द्धमान रूप से परिवर्तित होता रहता है।

जब भाव विशुद्धि के कारण संक्लेश (दूषित भाव) में हानि होती है, उत्कृष्ट संक्लेश ह्रास होकर मध्यम एवं जघन्य रूप से परिणमन करता है। यदि दूषित भाव में वृद्धि होती है तब वह भाव दूषित भाव में वृद्धि होती है, तब वह भाव दूषित से दूषिततर एवं दूषिततम रूप परिणमन करता है। इसी प्रकार परिशुद्ध भावना में वृद्धि होती है तो शुद्ध, शुद्धतर एवं शुद्धतम रूप परिणमन करती है। यदि हानि होती है तब विशुद्धतम से विशुद्धतर एवं विशुद्ध रूप परिणमन करती है।

जैसे अपने शत्रु को देखकर एवं उसकी शत्रुता को विचार में लाकर उसकी प्रतिशोध की भावना जब मन में जागृत होती है तब संक्लेश भाव उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। उसी प्रकार जब मित्रों की भेंट होती है एवं उनकी मित्रता स्मरण में लाकर उनके प्रति उपकार की भावना जाग्रत होती है। माता जब प्रिय पुत्र को देखती है तब उसका मातृत्व भाव उत्तरोत्तर बढ़ता है जिससे अनिच्छापूर्वक भी स्तन से दूध निकल जाता है।

**परिणामों में परिवर्तन**–भाव में जब परिवर्तन होता है तब वह भाव परिवर्तित होते-होते भावान्तर रूप परिणमन कर लेता है। जिस समय में स्वभाव के जघन्य से लेकर उत्कृष्ट स्थान तक परिवर्तन होता है वह परिवर्तन स्वस्थान संक्रमण है। जब भावान्तर रूप परिणमन करता है तब उसको परस्थान संक्रमण कहते हैं। जैसे-एकक स्थानीय संख्या एक से लेकर वृद्धि होते-होते 9 तक वृद्धि होती है तब एकक स्थानीय होने से स्वस्थान संक्रमण है जब एक वृद्धि होते-होते एकक स्थानीय नौ को अतिक्रमण करके दस आदि स्थानीय आदि रूप परिक्रमण करता है, तब परस्थान संक्रमण होता है। जैसे छोटा आम (कैरी) का अधिक खट्टा रस रहता है। जैसे-जैसे आम बड़ा होता जाता है, खट्टा रस कम होता जाता है। यह स्वस्थान संक्रमण है। इसी प्रकार विशुद्धि के कारण जब कृष्ण लेश्या रूप संक्लेश भाव मंद होते-होते कापोत लेश्या रूप होंगे तो वह स्वस्थान संक्रमण होता। जब आम पकना प्रारंभ होता है तब खट्टा

रस परिवर्तित होकर मीठा रस रूप परिणमन करता है, परिवर्तित होते-होते जब पूर्ण मीठा रस रूप परिवर्तित हो जाता है, तब तक परस्थान संक्रमण होता है।

**संकमणं सट्ठाणपरट्ठाणं होदित्ति किण्हसुक्काणं।**

**वड्ढीसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेसउभयेवि।।504।।** (जीवकाण्ड)

संक्रमण के दो प्रकार होते हैं-स्वस्थान संक्रमण और परस्थान संक्रमण। उनमें से कृष्ण लेश्या और शुक्ल लेश्या की वृद्धि में नियम से स्वस्थान संक्रमण ही होता है। हानि में स्वस्थान और परस्थान दोनों होते हैं। शेष नील, कापोत, तेज, पद्म लेश्याओं में हानि और वृद्धि में दोनों संक्रमण होते हैं।

एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने को संक्रमण कहते हैं। यदि वह उसी लेश्या में होता है तो स्वस्थान संक्रमण है और यदि एक लेश्या से दूसरी में होता है तो परस्थान संक्रमण है। वृद्धि में कृष्ण और शुक्ल लेश्या में स्वस्थान संक्रमण ही होता है क्योंकि संक्लेश की वृद्धि कृष्ण लेश्या के उत्कृष्ट अंश पर्यंत ही होती है तथा विशुद्धि की वृद्धि शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अंत तक ही होती है। अतः जो जीव कृष्ण लेश्या या शुक्ल लेश्या में वर्तमान है वह संक्लेश या विशुद्धि की वृद्धि में उन्हीं लेश्याओं के उत्कृष्ट अंश में जावेगा, किन्तु हानि में दोनों संक्रमण होते हैं क्योंकि उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या से संक्लेश की हानि होने पर, उसी लेश्या के उत्कृष्ट से मध्यम में और मध्यम से जघन्य अंश में आता है और जघन्य अंश से भी हानि होने पर नील लेश्या में चला जाता है। इसी तरह विशुद्धि की हानि होने पर शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट अंश से मध्यम में और मध्यम से जघन्य अंश में आता है तथा और भी हानि होने पर पद्म लेश्या में जाता है। इस तरह हानि में दोनों संक्रमण होते हैं। शेष मध्य की चारों ही लेश्याओं में हानि-वृद्धि दोनों में ही दोनों संक्रमण होते हैं।

## नीच मानवों की अभिमान प्रवृत्तियाँ व उसकी समस्याएँ

**(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)**

संकीर्ण से भी संकीर्ण व, दुष्ट से भी जो होते दुष्ट।
पापी से भी पापी मानव, स्वयं को मानते है श्रेष्ठ/(ज्येष्ठ)।। (ध्रुव)

अज्ञानी से भी जो अज्ञानी, मोही से भी जो महामोही।
क्रूर से भी जो हैं क्रूर, स्वयं को ही मानते महाज्ञानी।

अहंकारी से भी जो अहंकारी, स्वयं को ही मानते सर्वश्रेष्ठ।
तथाहि क्रोधी कामी मायाचारी, स्वयं को ही मानते अतिश्रेष्ठ।। (1)

मद्यपी यथा नशा की अवस्था में, स्वयं के दोषों को न जान पाते।
स्वयं को ही तो निर्दोषी मानते, सज्जन हितैषी को भी दोषी मानते।
यह सब प्रवृत्ति धर्म जाति मत, भाषा राष्ट्र व परम्परा में।
ग्राम-नगर-समाज-प्रदेश में, पाई जाती है राजनीति आदि में।। (2)

इसी हेतु होती अनेक समस्याएँ, ऊँच-नीच व भेद-भाव आदि।
ईर्ष्या घृणा व वैर विरोध, आक्रमण युद्ध हत्या शोषण आदि।
इन सब कारणों से मानव इतिहास, रक्त रंजित है प्राचीन काल से।
हर देश-पंथ-मत-जाति-भाषा में, राजनीति आदि (में) हर देश में।। (3)

रामायण व महाभारत युद्ध, सिकंदर चंगैज खाँ व नेपोलियन।
औरंगजेब से लेकर हिटलर तक, आक्रमण उपनिवेशवाद तक।
काला-गोरा व धनी-गरीब, शोषक-शोषित मालिक-मजदूर।
स्वामी-गुलाम व ऊँच-नीच भाव, इसके सब उदाहरण प्रचुर।। (4)

जब तक आत्म जागृति न होती, तब तक ये प्रवृत्तियाँ रहती।
आत्मवत् सब (जीवों) में होती दृष्टि, तभी सभी में होती साम्य प्रवृत्ति।
महापुरुषों की ही आध्यात्म दृष्टि, वसुधैव कुटुम्ब की उदार वृत्ति।
ऐसे महापुरुष ही होते श्रेष्ठ, 'कनक' माने उन्हें श्रेष्ठ व ज्येष्ठ।। (5)

(यह कविता मुनि अध्यात्मनंदी के कारण बनी।)
नन्दौड़, दिनांक 24.11.2015, रात्रि 7.52

# निन्दा दोष एक : पाप अनेक

## स्व-पर दोष दूर करने के उपाय-सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र (निन्दा से स्व-दोष बढ़ते हैं किन्तु सम्यग्दर्शन के 8 अंग व सम्यग्ज्ञान-चारित्र से दोष दूर होते हैं)

**(चाल : तुम दिल की धड़कन.....)**

स्व-पर दोष निवारण उपाय जानो, सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों को मानो।

सुज्ञान चारित्र से दोष निवारण, पर निन्दा से स्व (पर) दोष संवर्द्धन।। (ध्रुव)

सम्यग्दर्शन से आत्म-अनात्म श्रद्धान जिससे होता सम्यग्ज्ञान उत्पन्न।
सच्चिदानंदमय आत्म श्रद्धान उसके अनुकूल होता सम्यग्ज्ञान।।
द्रव्य-भाव-नोकर्म भी होते अनात्मा सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि (होती) अनात्मा।
क्रोध मान माया लोभ मोह अनात्मा नो कषाय भी होते अनात्मा।। (1)

शत्रु-मित्र-भाई-बंधु होते अनात्मा पर निन्दा अपमान होते अनात्मा।
ईर्ष्या-द्वेष-घृणा होते हैं अनात्मा पाँचों पाप भी होते हैं अनात्मा।।
ऐसा दृढ़ श्रद्धान (होता) है निःशंकअंग, अनात्मा में नहीं होता आकांक्षा भाव।
अनात्मा को आत्ममय की न होती मूढ़ता आत्म गुणों में न होती विचिकित्सा।। (2)

परदोष ढ़ाकना तो उपगूहन (स्व-पर) आत्म गुणों में स्थापित स्थितिकरण।
धर्म व धार्मिक/(आत्मिक गुणों) में होता वात्सल्य भाव,
आत्मिक गुणों को बढ़ाना प्रभावना अंग।।
उक्त श्रद्धान युक्त ज्ञान होता सुज्ञान आत्म उपलब्धि हेतु सदाचरण।
इसी हेतु अनात्म भाव का त्याग, इसी हेतु तप-त्याग ध्यान वैराग्य।। (3)

दीपक यथा प्रकाशित होता पहले अन्य भी प्रकाशित होते बाद में।
बुझा हुआ दीपक से संभव नहीं, निन्दा से दुर्गुण भी मिटते नहीं।।
निर्दोष आप्त/(अर्हन्) ही होते सच्चे उपदेशक, दुर्गुणी न होते सच्चे उपदेशक।
निन्दक न होते गुणी उपदेशक, निन्दक न होते स्व-पर (भी) सुधारक।। (4)

अतः निन्दक न बनो निन्दा न करो, आत्मिक भाव का विनाश न करो।
आत्महित सह परहित भी करो कनकनन्दी सदा आत्म स्वभाव धरो।।
सर्व जीवों में होती मैत्री भावना, गुणी जनों में प्रमोद भावना।
दुःखी जीवों में करुणा भावना, विपरीत जीवों में साम्य भावना।। (5)

पृष्ट माँस भक्षी सम होते निन्दक, स्व-पर अपकारी होते निन्दक।
मिथ्यात्व आराधक भी होते निन्दक, ईर्ष्या घृणादि से युक्त होते निन्दक।।
सर्वज्ञ जानते सभी जीवों के कुगुण, तथापि वे न होते निन्दक।
गुण दोष जानना है आत्म स्वभाव, निन्दा करना तो अनात्म भाव।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 20.12.2015, रात्रि 1.40, प्रातः 5.20 व 10.15

**संदर्भ-**

## हितोपदेशी के मधुर/स्नेहील गुण

**णिद्धं मधुरं हिदयंगमं च पल्हादणिज्जमेगंते।**
**तो पल्हावेदव्वो खवओ सो पण्णवंतेण।। (477)** भ.आरा.

जो अपना अपराध नहीं कहता उस क्षपक को समझाने वाले आचार्य को एकांत में स्नेह से भरे, कानों को सुखकर और हृदय में प्रवेश करने वाले सुखदायक वचनों से शिक्षा देना चाहिए। प्राप्त सन्मार्ग रत्नत्रय के निरतिचार पालन में सावधान आयुष्मन् लज्जा, भय और मान छोड़कर दोषों को निवेदन करो। गुरुजन माता-पिता के समान होते हैं उनसे कहने में लज्जा कैसी? वे अपने दोष की तरह दूसरे यतियों के भी दोष किसी से नहीं कहते। जो यति धर्म पर मिथ्या दोषारोपण को नष्ट करने में तत्पर रहते हैं वे क्या अपयश फैला सकते हैं? मोक्ष मार्ग में प्रधान सम्यग्दर्शन है और यतिजन में दूषण लगाना सम्यग्दर्शन का अतिचार है। रत्नत्रयरूपी कमलों का वन यदि अतिचार रूपी हिमपात से नष्ट हो तो वह शोभित नहीं होता। पर निन्दा से नीचगौत्र कर्म का आश्रव होता है। जो दूसरों की निंदा करता है वह स्वयं अनेक जन्मों में निन्दा का पात्र बनता है। दूसरे के मन को असह्य संताप देने वाले के असाता वेदनीय कर्म का बंध होता है। साधुजन भी निन्दा करते हैं कि अपने धर्मपुत्र को यह इस प्रकार अपयश रूप कीचड़ से क्यों लिप्त करता है। इस तरह दूसरों के दोषों को प्रकट करना अनेक अनर्थों का मूल है। कौन समझदार उसे करना पसंद करेगा?

## हितापदेशी के दूसरों को दोष न कहने का गुण

**लोहेण पीदमुदयं व जस्स आलोचिदा अदीचारा।**
**ण परिस्सवंति अण्णत्तो सो अप्परिस्सवो होदि।। (488)**

जैसे तपाये हुए लोहे के द्वारा पिया गया जल बाहर नहीं जाता वैसे ही जिस आचार्य से कहे गये दोष अन्य मुनियों पर प्रकट नहीं होते, वह आचार्य अपरिश्राव गुण से युक्त होता है।

## दोष कथक जिनधर्मी नहीं

**आयरियाणं वीसत्थदाए भिक्खु कहेदि सगदोसे।**
**कोई पुण णिद्धम्मो अण्णेसिं कहेदि ते दोसे।। (490)**

भिक्षु विश्वासपूर्वक अपने दोषों को आचार्यों से कहता है। कोई आचार्य जो जिन भगवान् के द्वारा कहे गये धर्म से भ्रष्ट होता है वह भिक्षु के द्वारा आलोचित दोषों को दूसरों से कह देता है कि इसने यह अपराध किया है अर्थात् ऐसा करने वाला आचार्य जिनधर्म से बाह्य होता है।

## दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना

**तेणं रहस्सं भिदंतएण साधु तदो य परिचत्तो।**
**अप्पा गणो य संघो मिच्छत्ताराधणा चेव।। (491)**

उस आलोचित दोष को प्रकट करने वाले आचार्य ने ऐसा करके उस साधु का ही त्याग कर दिया। क्योंकि उसने अपने चित्त में यह विचार नहीं किया कि मेरे द्वारा इसके दोष प्रकट कर देने पर वह लज्जित होकर दुःखी होगा अथवा आत्मघात कर लेगा, या क्रुद्ध होकर रत्नत्रय को ही छोड़ देगा तथा उस आचार्य ने अपनी आत्मा का त्याग किया, गण का त्याग किया, संघ का त्याग किया। इतना ही नहीं उसके मिथ्यात्व की आराधना का दोष भी होता है।

## दोष कथक साधु को संघ से बहिष्कार करने योग्य

**लज्जाए गारवेण व कोई दोसे परस्स कहिदोवि।**
**विपरिणामिज्ज उधावेज्ज व गच्छेज्ज वाध मिच्छतं।। (492)**

निर्यापकाचार्य के द्वारा दूसरे से साधु के गुप्त दोष कहने पर कोई क्षपक लज्जावश या मान की गुरुतावश विपरीत परिणाम कर सकता है। यह मेरा गुरु नहीं है। यदि मैं इसे प्रिय होता तो यह मेरा दोष क्यों कहता। यह गुरु मेरे बारे में चलते-फिरते प्रिय है ऐसा जो मैं सोचता था वह आज नष्ट हो गया, इस प्रकार की चिंता विपरीत परिणाम हैं। अथवा दोष प्रकट कर देने से कुपित होकर रत्नत्रय को छोड़ सकता है।

## दोष कथक आत्मा के त्यागी

**कोई रहस्सभेदे कदे पदोसं गदो तमारियं।**
**उद्दावेज्ज व गच्छं भिंदेज्ज व होज्ज पडिणीओ।। (493)**

रहस्य भेद करने पर कोई क्षपक द्वेषी बनकर उस आचार्य को मार सकता है अथवा गण में भेद डाल सकता है कि इस स्नेह रहित आचार्य से क्या लेना-देना है? जैसे इसने मेरा अपराध प्रकट कर दिया उसी प्रकार तुम्हें भी अपराध निवेदन करने पर दोष लगाएगा ऐसा कहकर अन्य साधुओं को विरोधी बनाकर गण में भेद डाल

सकता है। अथवा विरोधी हो सकता है।

## दोष कथक गण/संघ के त्यागी

**जह धरिसिदो इमो तह अम्हं पि करिज्ज धरिसणमिमोत्ति।**
**सव्वो वि गणो विप्परिणमेज्ज छंडेज्ज वायरियं।। (494)**

जैसे इस आचार्य ने अमुक साधु का दोष प्रकट किया उसी प्रकार यह हमारा दोष भी प्रकट कर देगा, ऐसा सोचकर समस्त गण-गण से अलग हो सकता है अथवा आचार्य का त्याग कर सकता है।

**शंका**–इस गाथा में तो कहा है कि गण आचार्य को छोड़ देता है और पूर्व गाथा में कहा है कि आचार्य ने गण का त्याग किया। इन दोनों कथनों की संगति नहीं बैठती?

**समाधान**–अतः दोषों को प्रकट करने वाले आचार्य ने गण का त्याग किया अतः गण भी उसे छोड़ देता है।

**तह चेव पवयणं सव्वमेव विप्परिणयं भवे तस्स।**
**तो से दिसावहारं करेज्ज णिज्जुहणं चावि।। (495)**

जिसमें रत्नत्रय ''प्राच्येते'' कहा जाता है वह प्रवचन है इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रवचन शब्द का अर्थ यहाँ संघ है। सभी संघ आचार्य के विरुद्ध हो सकता है और आचार्य पद को छीन सकता है अथवा उसका त्याग कर सकता है।

**सगणे व परगणे वा परपरिपवादं च मा करेज्जाह।**
**अच्चासादणविरदा होह सदा वज्जभीरु य।। (371)**

अपने गण में या दूसरे गण में दूसरों की निन्दा नहीं करनी चाहिए। अति आसादना से विरत रहो, सदा पाप से डरो।

**आयासवेरभयदुक्खसोयलहुगत्तणाणि य करेइ।**
**परणिंदा वि हु पावा दोहग्गकरी सुयणवेसा।। (372)**

पर निन्दा आयास, वैर, भय, दुःख, शोक और लघुता को करती है, पाप रूप है, दुर्भाग्य को लाती है और सज्जनों को अप्रिय है।

**किच्चा परस्स णिदं जो अप्पाणं ठवेदुमिच्छेज्ज।**
**सो इच्छदि आरोग्गं परम्मि कडुओसहे पीए।। (373)**

जो पर की निन्दा करके अपने को गुणी कहलाने की इच्छा करता है वह दूसरे के द्वारा कड़वी औषधि पीने पर अपनी निरोगता चाहता है अर्थात् जैसे दूसरे के

औषधि पीने पर आप निरोग नहीं हो सकता है। वैसे ही दूसरे की निन्दा करके कोई स्वयं गुणी नहीं बन सकता।

**दट्ठूण अण्णदोसं सप्पुरिसो लज्जिओ सयं होइ।**
**रक्खइ य सयं दोसंव तयं जणजंपणभएण।। (374)**

सत्पुरुष दूसरों के दोष देखकर स्वयं लज्जित होता है। लोकापवाद के भय से वह अपनी तरह दूसरों के भी दोष को छिपाता है।

**अप्पो वि वरस्स गुणो सप्पुरिसं पप्प बहुदरो होदि।**
**उदए व तेल्लबिंदु किह सो जंपिहिदि परदोसं।। (375)**

दूसरे का छोटा-सा भी गुण सत्पुरुष को पाकर अति महान् हो जाता है। जैसे तेल की बूँद पानी में फैलकर महान् हो जाती है तब वह सत्पुरुष दूसरे के दोष को कैसे कह सकता है?

**एसो सव्वसमासो तह जतह जह हवेज्ज सुजणम्मि।**
**तुज्झं गुणेहिं जणिदा सव्वत्थ कि विस्सुदा कित्ती।। (376)**

यह समस्त उपदेश का सार है। ऐसा यत्न करो जिससे सज्जनों में तुम्हारे गुणों से उत्पन्न हुई कीर्ति सर्वत्र फैले।

**एस अखंडियसीलो बहुस्सुदो य अपरोवतावी य।**
**चरण गुणसुट्ठिदोत्तिय घण्णस्स खु घोसणा भमदि।। (377)**

यह साधु अखण्डित समाधि के धारी हैं, बहुश्रुत हैं, दूसरों को कष्ट नहीं देते और चारित्र गुण में अच्छी तरह स्थित हैं। पुण्यशाली का यह यश सर्वत्र फैलता है।

**बाढत्ति भणिदूणं ऐदं णो मंगलेत्ति य गणो सो।**
**गुरुगुणपरिणद भावो आणंदंसुं णिवाणेइ।। (378)**

इस प्रकार गुरु का उपदेश सुनकर संघ ''हमें स्वीकार है'' ऐसा कहकर आपके ये वचन हमारे लिए अत्यंत मंगल कारक है, ऐसा कहता है तथा गुरु के गुणों में मन लगाकर आनंद के आसूँ गिराता है।

**भगवं अणुग्गहो में जं तु सुदेहोव्व पालिदा अम्हे।**
**सारणवारणपडिचोदणाओ धण्णा हु पावेंति।। (379)**

भगवान्! आपका हम पर बड़ा अनुग्रह है। आपने अपने शरीर की तरह हमारा पालन किया है तथा ''यह करो'' और ''वह मत करो'' इत्यादि शिक्षा दी है।

भाग्यशाली ही ऐसी शिक्षा प्राप्त करते है।

**अम्हे वि खमावेमो जं अण्णाणा पमादरागेहिं।**

**पडिलोमिदा य आणा हिदोवंदेस करिताण।। (380)**

आपकी आज्ञा और हित का उपदेश करने पर हमने जो अज्ञान, प्रमाद और रागवश उसके प्रतिकूल आचरण किया, उसके लिए हम भी आपसे क्षमा माँगते हैं।

**सहिदय सकण्ण याओ कदा सचक्खु य लद्धसिद्धिपहा।**

**तुज्झ वियोगेण पुणो णट्ठदिसाओ भविस्सामो।। (381)**

आपने हमें हृदय युक्त अर्थात् विचारशील बनाया। हमें संपूर्ण बनाया अर्थात् आपके उपदेश सुनकर कानों का फल प्राप्त किया आपने हमें आँखें प्रदान की अर्थात् हमें शास्त्र स्वाध्याय में लगाया तथा आपके प्रसाद से हमने मोक्ष का मार्ग प्राप्त किया। अब आपके वियोग से हम दिशाहीन हो जायेंगे। हमें कोई मार्ग दिखाने वाला नहीं रहेगा।

## दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना क्यों?

**जदि धरिसणमेरिसयं करेदि सिस्सस्स चेव आयरिओ।**

**धिद्धि अपुट्ठधम्मो समणोत्ति भणेज्ज मिच्छजणो।। (496)**

यदि आचार्य अपने शिष्यों के ही इस प्रकार दोष प्रकट करके दोषी करते हैं तो इन अपुष्ट धर्म वाले श्रमणों को धिक्कार है ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहेंगे।

**इच्चेवमादिदोसा ण होंति गुरुणो रहस्सधारिस्स।**

**पुट्ठेव अपुट्ठे वा अपरिस्साइस्स धीरस्स।। (497)**

जो आचार्य पूछने पर अथवा बिना पूछे शिष्य के द्वारा प्रकट किये दोषों को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य गुप्त रखने वाला अपरिश्रावी होता है और उसे ऊपर कहे दोष जरा भी नहीं छूते।

# हित-मित-प्रिय बनाम हित-अमित-अप्रिय

**(चाल : यमुना किनारे....., छोटी-छोटी गैया....., शत-शत वंदन.....)**

हित-मित-प्रिय वचन कथन करो!

अहितकर मित-प्रिय वचन न बोलो!

हितकर कटु व अमित कहा भी करो!

सद्गुरु सुवैद्य सम काम ही करो!! (1)

हित-मित-प्रिय तो सामान्य कथन,
सामान्य जन हेतु (यह) सही कथन।
सामान्य परिस्थिति में गुरु का (यही) कथन,
सामान्य विशेष में भी हितकर (ही) कथन।। (2)

वैद्य (यथा) रोग दूर हेतु दे (कटु) औषधि,
दोष दूर हेतु (तथा) सद्गुरु की (कटु) कथनी।
विपाक मधुर कटु औषधि व कथनी,
तन-मन-आत्म रोग दूर के कारण।। (3)

सद्गुरु छोटा दोष बड़ा कर (भी) कहते,
समझाने हेतु विषय विस्तार करते।
अतएव मित-प्रिय (सदा) ही न बोलते,
हितकर वचन सदा ही बोलते।। (4)

ठग चापलुस वैश्या सम प्रिय कथन,
कथनीय क्रूर सम न कटु वचन।
वाचाल सम न विधेय अति कथन,
स्व-पर हितकारी वचन ही 'कनक' मान्य।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 23.12.2015, रात्रि 10.50

## परिग्रह : महापाप क्यों?

### (परिग्रह में सभी पाप गर्भित)

### (धार्मिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से)

**(राग : अच्छा सिला दिया.....)**

तीर्थंकर ने कहा विश्व को, परिग्रह है महान् पाप।
जिस पाप में गर्भित होते हैं, अन्यान्य समस्त पाप।। (1)

इस सिद्धांत को अभी के वैज्ञानिक, कर रहे हैं सत्य-सिद्ध।
प्रदूषण से लेकर ग्लोबल वार्मिंग तक, होते परिग्रह से सिद्ध।। (2)

अंतरंग व बहिरंग रूप से, परिग्रह होते है जिन कथित।
चौदह अंतरंग-बहिरंग दस, संपूर्ण होते परिग्रह चौबीस।। (3)

तृष्णादि होते (है) अंतरंग परिग्रह, जिससे होता है बहिरंग।
चेतन-अचेतन-मिश्र रूप में, बहिरंग होते है परिग्रह।। (4)

सत्ता-संपत्ति आदि बहिरंग परिग्रह, हेतु मानव करते है विविध पाप।
लोभ-मद-मोह अंतरंग परिग्रह, शोषण आदि अनेक पाप।। (5)

खान खोदते व प्रकृति नाशते, पशु-पक्षी मछलियों को मारते।
फैक्ट्री चलाते गाड़ी चलाते, भोग-उपभोग की सामग्री बनाते।। (6)

इसी से प्रकृति का विनाश करते, पर्यावरण प्रदूषण भी करते।
ग्लोबल वार्मिंग इससे बढ़ता, जिससे वातावरण असंतुलित होता।। (7)

अतिवृष्टि अनावृष्टि होती, अकाल भूखमरी अधिक बढ़ती।
ग्लेशियर पिघलते बाढ़ भी आती, समुद्र का जल-स्तर भी बढ़ता।। (8)

भूकंप आता सुनामी बनता, जन-धन का भी विनाश होता।
ओजोन परत में छेद भी होता, अनेक रोगों का प्रकोप बढ़ता।। (9)

पाप भी होता संताप बढ़ता, जीते जी ही नारकी बनते।
मरण उपरान्त नारकी बनते, तीर्थंकर अतः इसे पाप बताते।। (10)

अतएव मानव संतोषी बनो, परिग्रह तृष्णा कभी न करो।
संयमी बनो सदाचारी बनो, 'कनक' चाहे धार्मिक बनो।। (11)

नन्दौड़, दिनांक 04.12.2015, प्रातः 7.00
(यह कविता विदेशी वैज्ञानिक साहित्य व वैज्ञानिक चैनलों से भी प्रभावित है।)

**आत्म-संबोधन**

# पर सुधार के पूर्व मैं स्व-सुधार करूँ!

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरेऽऽऽ.....)**
जिया रे!ऽऽऽ तू स्वयं प्रकाशी बनऽऽऽ
पर के दीप..जलाने से पूर्व...स्व-दीप जला रेऽऽऽ जिया रे!ऽऽऽ (ध्रुव)...

जो दीपक..स्वयं न जला होऽऽऽ अन्य को क्या जलाएगा?ऽऽऽ
तथाहि तू यदि स्वयं न योग्यऽऽऽ अन्य को क्या योग्य बनाएगाऽऽऽ
स्वयं योग्य बन रेऽऽऽ जिया रे...(1)...

चुंबक से बने लोहा भी चुंबकऽऽऽ आग से आग लगेऽऽऽ
धनी ही धन देने में समर्थऽऽऽ ज्ञानी से ज्ञान मिलेऽऽऽ
स्वयं ज्ञानी बन रेऽऽऽ जिया रे...(2)...

आत्महित तू पहले करोऽऽऽ पहले आदर्श तू बनोऽऽऽ
संभव हो परहित भी करोऽऽऽ स्व-पर उपकारी बनोऽऽऽ
मध्य दीपक बन रेऽऽऽ जिया रे...(3)...

सर्वज्ञ से तुम शिक्षा लेकरऽऽऽ यथायोग्य बनो निर्दोषीऽऽऽ
जिससे अन्य भी स्व-दोष देखेऽऽऽ दर्पण सम प्रतिबिंबभासीऽऽऽ
निर्मल आदर्श बन रेऽऽऽ जिया रे...(4)...

न बनो परोपदेशी पाण्डित्यऽऽऽ न बनो है रायचन्दऽऽऽ
धोबी या गधा सम काम न करोऽऽऽ मंथरा-शकुनी न बनोऽऽऽ
स्व-पर हितैषी बन रेऽऽऽ जिया रे...(5)...

ज्ञानी-ध्यानी व उदार बनोऽऽऽ समताधारी व पावनऽऽऽ
निस्पृह निराडम्बर अनिंदक बनोऽऽऽ बनो हे! सच्चिदानंदऽऽऽ
'कनक' शुद्धात्म बन रेऽऽऽ जिया रे...(6)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 23.12.2015, मध्याह्न 2.52

**संदर्भ-**

## तरण तारण श्रमण का स्वरूप

**उवरदपावो पुरिसो समभावो धम्मिगेसु सव्वेसु।**
**गुणसमिदिदोव सेवी हवदि स भागी सुमग्गस।। (259)** प्र.सा.

(स पुरिसो) वह पुरुष (सुमग्गस्स भारी) मोक्षमार्ग का पात्र (हवदि) होता है जो (उपरदपावो) सर्वविषय कषाय रूप पापों से रहित है (सव्वेसु धम्मिगेसु समभावो) धर्मात्माओं में समान भाव का धारी है तथा (गुण समिदिदोवसेवी) गुणों के समूहों को रखने वाला है। जो पुरुष सर्व पापों से रहित है, सर्व धर्मात्माओं में समान दृष्टि रखने वाला है तथा गुण समुदाय का सेवने वाला है और आप स्वयं मोक्षमार्गी होकर दूसरों

के लिए पुण्य की प्राप्ति का कारण है, ऐसा ही महात्मा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता रूप निश्चय मोक्षमार्ग का पात्र होता है।

**समीक्षा–**आचार्य देव ने यहाँ पर दीपक के समान स्वपर प्रकाशक, नौका के समान तरण-तारण, स्वोपकारक श्रमण का वर्णन किया है। जैसे दीपक स्वयं प्रकाशित होता है तब दूसरों को स्वयं प्रकाश मिलता है। वैसे ही जो आध्यात्मिक ज्योति से स्वयं प्रकाशमान होता है तब उनसे दूसरों को भी प्रकाश प्राप्त होता है। इसलिए महात्मा बुद्ध ने कहा था-

''**आददीव भवो परदीव भवो**'' अर्थात् स्वयं दीपक के समान प्रकाशमान बनो और दूसरों को प्रकाश दो। इसी प्रकार कुंदकुंद देव ने भी कहा है-''**आदहिदं कादव्वं जदि सक्कदि परहिदं कादव्वं**।'' अर्थात् आत्महित करना चाहिए तथा संभव हो तो पर का हित करना चाहिए। ऐसे जो महान् आत्मा होते हैं उनसे स्व-पर उपकार स्वाभाविक रूप से हो जाता है। ऐसे महापुरुषों का आकार, आचार, विचार स्वयंमेव एक खुला ग्रंथ होता है जिससे निरक्षर जीव भी अध्ययन कर सकता है। पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि के प्रथम चरण में भी कहा है-

अपने हित को चाहने वाला कोई एक बुद्धिमान निकट भव्य था। वह अत्यंत रमणीय भव्य जीवों के विश्राम के योग्य किसी एकांत आश्रम में गया। वहाँ उसने मुनियों की सभा में बैठे हुए वचन बोले बिना ही मात्र अपने शरीर की आकृति से मानो मूर्तिमान् मोक्षमार्ग का निरूपण करने वाले, युक्ति तथा आगम में कुशल, दूसरे जीवों के हित का मुख्य रूप से प्रतिपादन करने वाले और आर्य पुरुषों के द्वारा सेवनीय प्रधान निर्ग्रंथ आचार्य के पास जाकर विनय के साथ पूछा-'भगवन्! आत्मा का हित क्या है?' आचार्य ने उत्तर दिया-'आत्मा का हित मोक्ष है।' भव्य ने फिर पूछा-'मोक्ष का क्या स्वरूप है और उसकी प्राप्ति का उपाय क्या है?' 'आचार्य ने कहा कि-जब आत्मा भावकर्म, द्रव्यकर्म रूप मलकलंक और शरीर को अपने से सर्वथा जुदा कर देता है तब उसको जो अचिन्त्य स्वाभाविक ज्ञानादि गुणरूप और अव्याबाध सुखरूप सर्वथा विलक्षण अवस्था उत्पन्न होती है उसे मोक्ष कहते है।'

इसलिए तो नीतिकारों ने कहा है-

**साधुनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थ भूता हि साधवः।**
**कालेन फलन्तितीर्थ सद्यः साधु समागमः।। (1)**

साधुओं का दर्शन ही पुण्य है। तीर्थ स्वरूप साधु होते हैं। तीर्थ यात्रा का फल कालान्तर से प्राप्त होता है, परन्तु साधु का समागम सद्य शुभ फल प्रदायी है।

**गंगा पापं शशि तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा।**

**पापं तापं तथा दैन्यं सर्व सज्जन संगमः।। (2)**

गंगा से पाप का नाश होता है, चन्द्रमा से ताप नाश होता है, कल्पतरु से दीनता नष्ट होती है परन्तु साधु संगति से पाप, ताप, दीनता सबका नाश होता है।

**चन्दनं शीतलं लोके, चन्दनादपि चन्द्रमाः।**

**चन्द्र चन्दनयोर्मध्ये, शीतलः साधु सङ्गमः।। (3)**

लोक में चंदन शीतल है, चंदन से शीतल चंद्रमा और चंद्रमा से शीतल साधुओं का समागम होता है।

**पद्मिनी राजहंसश्च निर्ग्रन्था च तपोधना।**

**यस्मिन् क्षेत्रे विचरन्ति सुभिक्षं तत्र निश्चयः।।**

सुलक्षणी पद्मनी स्त्री, राजहंस, निर्ग्रंथ तपोधन जिस क्षेत्र में विचरण करते हैं वहाँ निश्चय से सुख, शांति, सुभिक्ष होता है।

**'गु'अन्धकारस्तु 'रू'तस्य निरोधकम्।**

**अन्धकारः निरोधत्वात् गुरुः इत्यभिधियते।। (5)**

गुरु = गु = अंधकार, रु = प्रकाश। जो अज्ञान रूपी अंधकार को हटाकर प्रकाश में ला दे वही तो गुरु है। वही तारण-तरण है। अपने आप भी तिरते हैं दूसरों को भी तिराते हैं। गुरु-गुणों से भारी यानि जिसमें गुण भरे हो उसे गुरु कहते हैं। जो गुणों से खाली है वह गुरु नहीं।

**गुरु गोविन्द दोऊ खड़े काके लागूं पाय।**

**बलिहारी गुरु आपकी गोविन्द दियो बताय।। (6)**

गुरु की महिमा तो भगवान् से भी अधिक है। जिनवाणी, भगवान् की मूर्ति ये तो मूक है, बोलने वाली नहीं परन्तु गुरु तो रास्ता दिखाने वाले हैं। इस अपेक्षा से गुरु को सर्वश्रेष्ठ कहा है। पशुओं के गुरु नहीं होते तभी तो वह उन्नति नहीं कर सकते। मुक्ता मणि, चंदन से भी अधिक महत्व है गुरुओं का।

इसलिए सच्चे गुरु को भागचंद कवि ने तरण-तारण कहा है। यथा-

**ऐसे साधु सुगुरु कब मिलि हैं।**

**आप तरे और पर को तारै निस्पृही निर्मल हैं।।**

ऐसे तारण तरण साधु के लिए संपूर्ण विश्व अपने परिवार के समान है। कहा है ''उदार पुरुषाणां तु वसुधैव स्व कुटुम्बकम्'' वे स्वआत्म कल्याण करते हैं और दूसरों के आत्म कल्याण के लिए मनसा-वचसा-कर्मणा से तत्पर रहते हैं। संसार के मोही रागी द्वेषी जीव के दुःख को देखकर भावना भाते हैं और उपदेश देते हैं। इसे ही आगम में अपाय विचय एवं विपाक विचय धर्मध्यान कहा है। दुःखी जीवों के दुःख को देखकर एवं उनकी परिस्थिति को देखकर उनके योग्य उपदेशामृत पान कराते हैं। ऐसे महापुरुष भव्यों को उपदेश देते हैं-

**यद्यपि कदाचिदस्मिन् विपाकमधुरं तदात्वकटु किंचित्।**
**त्वं तस्मान्मा भैषीर्यथातुरो भेषजादुग्रात्।। (3)**

यद्यपि इस (आत्मानुशासन) में प्रतिपादित किया जाने वाला कुछ सम्यग्दर्शनादि का उपदेश कदाचित् सुनने में अथवा आचरण के समय में थोड़ा-सा कडुवा (दुःखदायक) प्रतीत हो सकता है तो भी वह परिणाम में मधुर (हितकारक) ही होगा। इसलिये हे आत्मन्! जिस प्रकार रोगी तिक्ष्ण (कड़वी) औषधि से नहीं डरता है उसी प्रकार तू भी उससे डरना नहीं।

**विषयविषमाशनोत्थित - मोहज्वरजनिततीव्रतृष्णास्य।**
**निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान्।। (17)**

विषयरूप विषम भोजन से उत्पन्न हुए मोहरूप ज्वर के निमित्त से जो तीव्र तृष्णा (विषयाकांक्षा और प्यास) से सहित है तथा जिसकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण हो रही है ऐसे तेरे लिए प्रायः पेय (पीने के योग्य सुपाच्य फलों का रस आदि तथा अणुव्रत आदि) आदि की चिकित्सा अधिक श्रेष्ठ होगी।

**जना घनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युर्वृथोत्थिताः।**
**दुर्लभा ह्यन्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः।। (4)**

जिनका उत्थान (उत्पत्ति और प्रयत्न) व्यर्थ है ऐसे वाचाल मनुष्य और मेघ दोनों ही सरलता से प्राप्त होते हैं किन्तु जो भीतर से आर्द्र (दयालु और जल से पूर्ण) होकर जगत् का उद्धार करना चाहते हैं ऐसे वे मनुष्य और मेघ दोनों ही दुर्लभ हैं।

**लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाः पुरा।**
**दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः।। (143)**

पूर्व काल में जिस धर्म के आचरण से इस लोक और परलोक दोनों ही लोकों में हित होता है उस धर्म का व्याख्यान करने के लिए तथा उसे सुनने के लिए भी बहुत से जन सरलता से उपलब्ध होते थे परन्तु तद्नुकूल आचरण करने के लिए उस समय भी बहुत जन दुर्लभ ही थे। किन्तु वर्तमान में तो उक्त धर्म का व्याख्यान करने के लिए और सुनने के लिए भी मनुष्य दुर्लभ है, फिर उसका आचरण करने वाले तो दूर ही रहे।

**गुणागुणविवेकिभिर्विहितमप्यलं दूषणं।**
**भवेत् सदुपदेशवन्मतिमतामतिप्रीतये।।**
**कृतं किमपि धाष्ट्र्यतः स्तवनमप्यतीर्थोषितैः।**
**न तोषयति तन्मनांसि खलु कष्टमज्ञानता।।**

जो गुण और दोष का विचार करने वाले सज्जन हैं वे यदि कदाचित् किसी दोष को भी अतिशय प्रकट करते हैं तो वह बुद्धिमान मनुष्यों के लिए उत्तम उपदेश के समान अत्यंत प्रीति का कारण होता है। परन्तु जो आगमज्ञान से रहित है ऐसे अविवेकी जनों के द्वारा यदि धृष्टता से कुछ प्रशंसा भी की जाती है तो वह उन बुद्धिमान मनुष्यों के मन को संतुष्ट नहीं करती है। निश्चय से वह अज्ञानता ही दुःखदायक है।

**दोषान् कांश्चन् तान् प्रवर्तकतया प्रच्छाद्य गच्छत्ययं।**
**सार्धं तैः सहसा म्रियेद्यदि गुरूः पश्चात्करोत्येष किम्।।**
**तस्मान्मे न गुरू गुरूर्गुरूतरान् कृत्वा लघूंश्च स्फुटं।**
**ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणंसोऽयं खलः सद्गुरूः।। (141)**

यदि यह गुरु शिष्य के उन किन्हीं दोषों की प्रवृत्ति कराने की इच्छा से अथवा अज्ञानता से आच्छादित करके प्रकाशित न करके चलता है और इस बीच में यदि वह शिष्य उक्त दोषों के साथ मरण को प्राप्त हो जाता है तो फिर यह गुरु पीछे क्या कर सकता है? कुछ भी उसका भला नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह शिष्य विचार करता है कि मेरे दोषों को आच्छादित करने वाला वह गुरु वास्तव में मेरा गुरु (हितैषी आचार्य) नहीं है किन्तु जो दुष्ट मेरे क्षुद्र भी दोषों को निरंतर सूक्ष्मता से देख करके उन्हें अतिशय महान् बना करके स्पष्टता से कहता है वह यह दुष्ट ही मेरा समीचीन गुरु है।

**विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।**

**रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरूक्तयः।। (142)**

कठोर भी गुरु के वचन भव्य जीव के मन को इस प्रकार से प्रफुल्लित (आनंदित) करते हैं जिस प्रकार कि सूर्य की कठोर (संतापजनक) भी किरणें कमल की कली को प्रफुल्लित किया करती हैं।

भगवती आराधना में शिवकोटि आचार्य ने दूसरों के लिए हितकर परन्तु कटु शब्द बोलने वाले को भी श्रेष्ठ कहा है। जो परोपकार न करके दूसरों की उपेक्षा करता है ऐसे श्रमण को हेय बताया है। यथा-

**पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणस्स सगणवासिस्स।**

**कडुगं व ओसहं तं महुरविवायं हवइ तस्स।। (359)**

अपने गण के वासी साधु को हितकारी किन्तु हृदय को अनिष्ट भी लगने वाले वचन बोलना चाहिए, क्योंकि वे वचन कडुवी औषधि की तरह उसके लिए मधुर फलदायक होते हैं। दूसरे को अनिष्ट वचन बोलने से हमारा अपना क्या प्रयोजन है, क्या वह स्वयं नहीं जानता? ऐसा मान उसकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। परोपकार करना ही चाहिए। जैसे तीर्थंकर शिष्यजनों के संबोधन के लिए ही विहार करते हैं। महत्ता इसी में है कि परोपकार करने में तत्पर रहे।

**क्षुद्राः संति सहस्त्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः।**

**स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणी।।**

**दुष्पूरोदरपूरणाय पिबति स्त्रोतः पतिं वाडवो।**

**जीमूतस्तु निदाघसंभृतजगत्संताप विच्छित्तये।। (359)**

'अपने ही भरण-पोषण में लगे रहने वाले क्षुद्रजन तो हजारों हैं किन्तु परोपकार ही जिसका स्वार्थ है ऐसा पुरुष सज्जनों में अग्रणी विरल ही होता है। बड़वानल अपना कभी न भरने वाला पेट भरने के लिए समुद्र का जल पीता है किन्तु मेघ ग्रीष्म से संतप्त जगत् के संताप को दूर करने के लिए समुद्र का जल पीता है।'

**पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणं णरेण धेत्तव्वं।**

**पेल्लेदूण वि छूढं बालस्स घदं व तं खु हिदं।। (360)**

हृदय को अनिष्ट भी वचन गुरु के द्वारा कहे जाने पर मनुष्य को पथ्य रूप से ग्रहण करना चाहिए। जैसे बच्चे को जबरदस्ती मुँह खोलकर पिलाया गया घी हितकारी

होता है उसी तरह वह वचन भी हितकारी होता है।

अनगार धर्मामृत में भी उपरोक्त रहस्य का ही प्रतिपादन निम्न प्रकार से किया है-

**विधिवद्धर्मसर्वस्वं यो बुद्धवा शक्तिश्चरन्।**
**प्रवक्ति कृपयाऽन्येषां श्रेयः श्रेयोऽर्थिनां हि सः।। (10)**

जो विधिपूर्वक व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयात्मक संपूर्ण धर्म को परमागम से और गुरु परंपरा से जानकर या रत्नत्रय से समाविष्ट आत्मा को स्वसंवेदन से जानकर शक्ति के अनुसार उसका पालन करते हुए लाभ, पूजा, ख्याति की अपेक्षा न करके कृपाभाव से दूसरों को उसका उपदेश करते हैं, अपने परम कल्याण के इच्छुक जनों को उन्हीं की सेवा करनी चाहिए, उन्हीं से धर्म श्रवण करना चाहिए।

**स्वार्थैकमतयो भान्तु मा भान्तु घटदीपवत्।**
**परार्थे स्वार्थमतयो ब्रह्मवद् भान्त्वहर्दिवम्।। (11)**

जिनकी मति परार्थ में न होकर केवल स्वार्थ में ही रहती है वे घट में रखे दीपक की तरह लोक में चमके या न चमके, उसमें हमें कोई रूचि नहीं है किन्तु जो स्वार्थ की तरह परार्थ में भी तत्पर रहते हैं वे ब्रह्म की तरह दिन-रात प्रकाशमान रहें।

**स्वदुःखनिर्घृणारम्भाः परदुःखेषु दुःखिताः।**
**निर्व्यपेक्षं परार्थेषु बद्धकक्षा मुमुक्षवः।।** म.पु. 9/164

'मुमुक्षुजन अपने दुःख को दूर करने के लिए प्रयत्न करना भी उचित नहीं मानते तथा परदुःख से दुःखी होकर बिना किसी अपेक्षा के परोपकार के लिए सदा तत्पर रहते हैं।'

**आदहिदं कादव्वं जइ सक्कइ परहिदं च कादव्वं।**
**आदहिदपरहिदादो आदहिदं सुट्ठु कादव्वं।।**

'अपना हित करना चाहिए, यदि शक्य हो तो परहित करना किन्तु आत्महित और परहित में से आत्महित ही सम्यक् रूप से करना चाहिए।'

**परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।**
**उपकुर्वन् परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्।।**

'परोपकार को छोड़कर स्वोपकार में तत्पर रहो। लोक के समान दृश्यमान

परपदार्थों का उपकार करने वाला मूढ़ होता है।' जैन श्वेताम्बर ग्रंथ दशवैकालिक में भी कहा है कि-

**निक्खम्ममाणाए बुद्धवयणे निच्चं चित्तसमाहिओ हवेज्जा।**
**इत्थीण वसं न यावि गच्छे वंतं नो पडियायई जे स भिक्खू।। (1)**

जो तीर्थंकर के उपदेश से निष्क्रमण कर (प्रव्रज्या ले) निर्ग्रंथ प्रवचन में सदा समाहित-चित्त होता है, जो स्त्रियों के अधीन नहीं होता, जो वमे हुए को वापस नहीं पीता (त्यक्त भोगों का पुनः सेवन नहीं करता)-वह भिक्षु है।

**रोइय नायपुत्तवयणे अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।**
**पंच य फासे महव्वयाइं पंचासवसंवरे जे स भिक्खू।। (5)**

जो ज्ञातपुत्र के वचन में श्रद्धा रखकर छहों कायों (सभी जीवों) को आत्मसम मानता है, जो पाँच महाव्रतों का पालन करता है, जो पाँच आस्रवों का संवरण करता है वह-भिक्षु है।

**न य वुग्गहियं कहं कहेज्जा न य कुप्पे निहुइंदिए पसंते।**
**संजमधुवजोगजुत्ते उवसंते अविहेडए जे स भिक्खु।। (10)**

जो कलहकारी कथा नहीं करता, जो कोप नहीं करता, जिसकी इन्द्रियाँ अनुद्धत हैं, जो प्रशांत है, जो संयम में ध्रुवयोगी है, जो उपशांत है, जो दूसरों को तिरस्कृत नहीं करता-वह भिक्षु है।

**न परं वएज्जासि अयं कुसीले जेणऽन्नो कुप्पेज्ज न तं वएज्जा।**
**जाणिय पत्तेयं पुण्णपावं अत्ताणं न समुक्कसे जे स भिक्खू।। (18)**

प्रत्येक व्यक्ति के पुण्य-पाप पृथक्-पृथक् होते हैं-ऐसा जानकर जो दूसरे को यह कुशील (दुराचारी) है ऐसा नहीं कहता, जिससे दूसरा कूपित हो ऐसी बात नहीं कहता, जो अपनी विशेषता पर उत्कर्ष नहीं लाता वह भिक्षु है।

**पवेयए अज्जपयं महामुणी धम्मे ठिओ ठावयई परं पि।**
**निक्खम्म वज्जेज्ज कुसीललिंगं न यावि हस्सक्हए जेस भिक्खू।।(20)**

जो महामुनि आर्यपद (धर्मपद) का उपदेश करता है, जो स्वयं धर्म में स्थित होकर दूसरे को भी धर्म में स्थित करता है, जो प्रव्रजित हो कुशील-लिंग का वर्णन नहीं करता है, जो दूसरों को हँसाने के लिए कुतूहल पूर्ण चेष्टा नहीं करता-वह भिक्षु है।

उपर्युक्त तरण-तारण श्रमण का जो आश्रय लेता है, उनकी सेवा भक्ति अर्चना करता है वह भी शुभ भाव से पुण्यानुबंधी पुण्य बाँधता है, पाप की निर्जरा करता है और परंपरा से मोक्ष प्राप्त करता है। दर्शन स्त्रोत में कहा है-

**दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।**
**न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम्।। (2)**

जिस प्रकार छिद्र सहित हाथों में जल बहुत समय नहीं टिकता है उसी प्रकार जिनेन्द्र देव के दर्शन और साधुओं की वंदना करने से पाप लंबे समय तक नहीं ठहरते है।

**उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।**
**भक्तेः सुन्दररुपं स्तवनात्कीर्तिस्तपो निधिषु।। (115)**

गुरुओं को प्रणाम करने से उत्तम गोत्र की प्राप्ति होती है, दान देने से उत्तमोत्तम भोगों की प्राप्ति होती है, उपासना करने से स्वयं की पूजा होती है। भक्ति करने से कामदेव सदृश्य लावण्य-सुंदर शरीर की प्राप्ति होती है, स्तवन करने से कीर्ति दशों दिशाओं में फैलती है।

**गुरू भक्ति सती मुक्त्यै, क्षुद्रं किं वा न साधयेत्।**
**त्रिलोकी मूल्य रत्नेन, दुर्लभः किं तुःषोत्करः।।**

यदि गुरु भक्ति से मोक्ष रूपी अत्यंत मूल्यवान वस्तु मिल सकती है, तो क्या अन्य क्षुद्र कार्यों की सिद्धि नहीं हो सकती है?

जिस अमूल्य रत्न से त्रिलोक मिल सकता है उस रत्न से क्या सामान्य तुष नहीं मिल सकता है? अर्थात् निश्चय से मिल सकता है। इसलिये हितकांक्षियों को सतत् प्रयत्नशील होकर गुरुओं की सेवा करनी चाहिए।

गीता में कहा भी है-

**विहाय कामान्यः सर्वान्पुसांश्चरति निस्पृहः।**
**निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति।। (177)** पृ. 40

सब कामनाओं का त्याग करके जो पुरुष इच्छा, ममता और अहंकार रहित होकर विचरता है, वही शांति पाता है।

मेरे आध्यात्मिक अनुभव संबंधी आध्यात्मिक वीर रसयुक्त शोधपूर्ण कविता

# मेरे आध्यात्मिक अनुभव में दृढ़ता बढ़ने के कारण व परिणाम

-आचार्य कनकनन्दी

**(चाल : अपनी आजादी को हम हरगिज मिटा सकते नहीं.....)**

आत्म अनुभव को मेरे...कदापि (मैं) त्याग सकता नहीं...
कोई माने या न माने...उसकी मुझे चिन्ता नहीं...2...(ध्रुव...)

मैं हूँ चैतन्य आत्मा...तन व मन से भी परे...2
राग-द्वेष-काम-क्रोध...मोह-मद से भी परे...2
ईर्ष्या तृष्णा ख्याति पूजा...द्वंद्व चिन्ता से परे...
ऊँच-नीच व भेद-भाव...संकीर्ण-संक्लेश परे...कोई माने...(1)...

सत्य-समता-सरलता...सहजता शुचिता क्षमा...2
निरालंब व निर्विकार...संतुष्टि व शांतता...2
आत्म अनुभव आत्म ध्यान...आत्म शुद्धता युत...
निर्विकल्प व निरपेक्ष...आत्म प्राप्ति ही लक्ष्य...कोई माने...(2)...

इससे अनुभव मेरा...बढ़ रहा है हर क्षण/(हरदम)...2
शोध-बोध-कल्पना भी...हर समय वर्द्धमान...2
ज्ञात-अनुमान-मिश्रित ज्ञान...हो रहा सत्य सिद्ध...
देश-विदेश के हर क्षेत्र में...हो रहा सत्य सिद्ध...कोई माने...(3)...

आत्मविश्वास मेरा...इससे हो रहा दृढ़तम...2
मम आत्मा परम सत्य...मुझमें बोध अनंत...2
सत्य-समता आदि से ही...बढ़ता है शोध-बोध...
आत्म शुद्धता से ही...बढ़ता है ज्ञानानंद...कोई माने...(4)...

इन सभी अनुभवों को मैं...प्रायोगिक सही पाता हूँ...2
मुझ से लेकर पृथ्वी भर में...गुण व दोष में पाता हूँ...2
अन्य जन अनुभव को मेरे...गलत माने पूर्व में...
सत्य सिद्ध होने पर वे...सत्य मान रहे अभी...कोई माने...(5)...

इससे मेरी दृढ़ता भी...दिनों दिन है बढ़ रही...2
सहयोगी हो रहे हर दिन...विदेशों के शोध-बोध भी...2
आत्म सिद्धांतों में मेरा...श्रद्धान हो रहा दृढ़तम...
आध्यात्मिक (महा) पुरुषों को 'कनक'...माने परम महान्...कोई माने...(6)...

ढोंग या पाखण्डों से...ख्याति पूजा या लाभ से...2
संकल्प-विकल्प से...संक्लेश/(द्वंद्व) से अनुभव घटे...2
अंधश्रद्धा-संकीर्णता...चिन्ता से अनुभव घटे...
अपमान-परपीड़ा-निन्दा...द्वेष से अनुभव घटे...कोई माने...(7)...

**वन्दे आत्मन्...वन्दे स्वात्मन्...वन्दे परमात्मन्...**

नन्दौड़, दिनांक 10.12.2015, रात्रि 8.15

(यह कविता ''साइको साइबरनेटिक्स'' (मन की शक्ति) से भी प्रेरित है।)

## सन्दर्भ-

**सम्मद्दंसणणाणं चरणं मोक्खस्स कारणं जाणे।**
**ववहारा णिच्छयदो तत्तियमइयो णिओ अप्पा।।(39)**

Known that from the ordinary point of view, perfect faith, knowledge and conduct are the cause of liberation, while really one's own soul consisting of these three (is the cause of liberation).

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय को व्यवहार से मोक्ष का कारण जानो तथा निश्चय से सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान और चारित्र स्वरूप जो निज आत्मा है उसको मोक्ष का कारण जानो।

आचार्यश्री ने प्रथम महाधिकार में विश्व के मूलभूत षड्द्रव्यों का तथा द्वितीय महाधिकार में सप्त तत्त्व एवं नव पदार्थों का संक्षिप्त, सारगर्भित सांगोपांग, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक, विश्लेषण करने के अनन्तर इस तृतीय महाधिकार में स्वतंत्रता के मार्ग का वर्णन कर रहे हैं। इस गाथा में व्यवहार एवं निश्चय मोक्ष मार्ग का वर्णन आचार्यश्री ने किया है। आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है-

**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।**

सम्यक् दर्शन Right Darsana belief सम्यक् ज्ञान Right Gyan (knowledge) सम्यक् चारित्र Right Charitra (conduct) मोक्षमार्ग the path

to liberation.

Right belief, right knowledge, right conduct, these (together constitute) the path to liberation.

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।

**रत्नत्रय**–सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र को धर्म या मोक्ष मार्ग इसलिए कहते हैं कि इनसे जीव बंधन में नहीं पड़ता वरन् बंधन से मुक्त होता है। जैसा कि अमृतचंद्र सूरी ने कहा है-

**दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः।**

**स्थितिरात्मनि चरित्रं कुत एतेभ्यो भवति बंधः।। (216)** (पु.उ.)

सम्यग्दर्शन आत्मा की प्रतीति को कहा जाता है। आत्मा का सम्यक् प्रकार ज्ञान करना बोध-सम्यग्ज्ञान कहलाता है। आत्मा में स्थिर होना अर्थात् लवलीन होना सम्यक् चारित्र कहा जाता है। इनसे बंध कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

कुंदकुंद स्वामी भी यह भेदाभेदात्मक निश्चय व्यवहारात्मक मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करते हुए कहते हैं-

**दंसण णाण चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणां णिच्चं।**

**ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। (16)** समयसार

**सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि सेवतियव्यानि।**

**साधुना व्यवहारनयेन नित्यं सर्वकालं।**

साधु को व्यवहार नय से सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र इन तीनों को भिन्न-भिन्न समझकर नित्य-सदा ही इनकी उपासना करनी चाहिए। अपने उपयोग में लाना चाहिए। किन्तु शद्ध निश्चयनय से वे तीनों एक शुद्धात्मा स्वरूप ही हैं। उससे भिन्न नहीं हैं ऐसा समझना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पञ्चेन्द्रियों के विषय और क्रोधादि कषायों से रहित जो निर्विकल्प समाधि है उसमें ही सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों होते हैं।

**णिज्जावगो ये णाणं वादो झाणं चरित्त णावा हि।**

**भवसागरं तु भविया तरंति तिहि सण्णिवायेण।। (100)** (मूलाचार)

खेवटिया ज्ञान है, वायु ध्यान है और नौका चारित्र है। इनके संयोग से ही भव्य जीव भवसागर से तिर जाते हैं।

**णाणं पयासओ तओ सोधयो संजयो य गुत्तियरो।**

**तिण्हंपि य संपजोगे होदि हु जिण सासणे मोक्खे।। (101)**

ज्ञान प्रकाशक है, तप शोधक है और संयम रक्षक है इन तीनों के संयोग से ही अर्थात् मिलने पर ही जिनशासन में मोक्ष प्राप्ति होती है।

**तवेण धीरा विधुणंति पावं अज्झप्पजोगेण खवंति मोहं।**

**संखीण छुदराग दोसा उत्तमा सिद्धिगदि पयाति।। (103)**

धीर मुनि तप से पाप नष्ट करते हैं, अध्यात्म योग से मोह का क्षय करते है अतः वे उत्तम पुरुष मोह रहित और राग-द्वेष रहित होते हुए सिद्धि प्राप्ति कर लेते हैं।

**जीवादी सद्दहणं सम्मत्त तेसिमधिगमो णाणं।**

**रागादी परिहणं चरणं ऐसा दु मोक्खसहो।। (155)**

**सम्यग्दर्शन-**

**जीवादी सद्दहण सम्मंत**-जीवादिनवपदार्थानां विपरीताभिनिवेशरहितत्वेन श्रद्धानं सम्यग्दर्शन।

**जीवादि सद्दहणं सम्मतं**-जीवादि नव पदार्थों का विपरीत अभिप्राय से रहित जो सही श्रद्धानं है, वही सम्यग्दर्शनम् है।

**सम्यग्ज्ञान-**

**तेसिमधिगमो णाणं**-तेषामेव संशयविमोहविभ्रमरहितत्वेनाधिगमो निश्चयः परिज्ञान सम्यग्ज्ञानम्।

**तेसिमधिगमो णाणं**-उन्हीं जीवादि पदार्थों का संशय-उभय कोटिज्ञान, विमोह-विपरीत एक कोटि ज्ञान, विभ्रम-अनिश्चित ज्ञान, इन तीनों से रहित जो यथार्थ अधिगम होता है, निर्णय कर लिया जाता है, जान लिया जाता है, वह सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

**सम्यक्चरित्र-**

**रागादि परिहरणं चरणं।**

**तेषामेव सम्बन्धित्वेन रागादिपरिहारश्चारित्र।**

रागादि परिहरणं चरणं और उन्हीं के संबंध में होने वाले जो रागादिक विभाव होते हैं उनको दूर हटा देना सो सम्यक्चारित्र कहलाता है।

**व्यवहार मोक्षमार्ग-**

**एसो दु मोक्खोपहो इत्येव व्यवहारमोक्षमार्गः।**

**यह व्यवहार मोक्षमार्ग है।**

**निश्चय मोक्षमार्ग-**

भूतार्थनय के द्वारा जाने हुए उन्हें जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्ध आत्मा से पृथक् रूप में ठीक-ठीक अवलोकन करना निश्चय सम्यग्दर्शन कहलाता है और उन्हीं जीवादि पदार्थों को अपनी शुद्धात्मा से पृथक् रूप में जानना सो निश्चय सम्यग्ज्ञान है और उनको शुद्धात्मा से भिन्न जानकर रागादिक रूप विकल्प से रहित होते हुए अपनी शुद्धात्मा में अवस्थित होकर रहना निश्चय सम्यक्चारित्र है इस प्रकार यह निश्चय मोक्ष मार्ग हुआ।

"Self reverence, self knowledge and self control.
These three alone lead life to sovereign power."

## निश्चय से रत्नत्रयधारी आत्मा ही मोक्ष मार्ग

**रयणत्तयं ण वट्टइ अप्पाणं मुइत्तु अण्ण दवियम्हि।**
**तम्हा तत्तियमइय होदि हु मोक्खस्सकारणं आदा।। (40)**

The three jewels (i.e. perfect faith, perfect knowledge and perfect conduct) do not exist in any other substance except the soul. Therefore, the soul surely is the cause of liberation.

आत्मा को छोड़कर अन्य द्रव्य में रत्नत्रय नहीं रहता है इस कारण उस रत्नत्रयमयी जो आत्मा है वही निश्चय से मोक्ष का कारण हैं।

आचार्यश्री ने इस गाथा में रत्नत्रय युक्त आत्मा ही निश्चय से मोक्ष का कारण बताया है क्योंकि रत्नत्रय की पूर्णता ही मोक्ष है और रत्नत्रय आत्मा में विद्यमान रहता है।

योगेन्द्र देव ने भी योगसार में कहा है-

**रयणत्तय-संजुत्तं जिउ उत्तिमु तित्थु पवित्तु।**
**मोक्खहँ कारण जोइया अण्ण ण तंतु ण मंतु।। (83)**

हे योगिन्! रत्नत्रय युक्त जीव ही उत्तम पवित्र तीर्थ हैं, और वही मोक्ष का कारण है। अन्य कुछ मंत्र-तंत्र मोक्ष का कारण नहीं है।

**अप्प दंसणु णाणु मुणि अप्पा चरणु वियाणि।**
**अप्पा संजमु सील तउ अप्पा पच्चक्खाणी।। (81)**

आत्मा को ही दर्शन और ज्ञान समझो, आत्मा ही चारित्र है और संयम, शील, तप और प्रत्याख्यान भी आत्मा को ही मानो।

**रयणत्तयसजुत्तं जीव हवदि उत्तम तित्थं।**

**संसार तरइ जेणं रयणत्तयं दिव्व णावेण।।**

रत्नत्रय से युक्त जीव ही उत्तम तीर्थ है। क्योंकि ''तरंति संसारं येन भव्यास्तत्तीर्थ'' अर्थात् संसार रूपी सागर से भव्य जिसके माध्यम से तिरता उसे तीर्थ कहते हैं। कहा भी है-''**तीर्थ शब्देन मार्गो रत्नत्रयात्मकः**'' तीर्थ शब्द से रत्नत्रय मार्ग जानना चाहिएँ इसलिए इस गाथा में कहा गया है कि 'संसार तरइ जेणं रयणत्तयं दिव्य णावेण' यह जीव जिस दिव्य नाव से संसार रूपी सागर को पार करता है, ऐसी रत्नत्रय रूपी नौका ही उत्तम तीर्थ है।

आत्मा प्रतीति रूप जो आत्म का ही गुण है उसे 'सम्यग्दर्शन' कहते हैं। आत्मा का जो परिज्ञान रूप आत्मा का गुण है, उसे ''सम्यग्ज्ञान'' कहते हैं और आत्मा में रमण करने रूप आत्म गुण को चारित्र कहते हैं। इसलिए रत्नत्रय आत्मा का ही अभिन्न स्वभाव है। इसलिए रत्नत्रय आत्मा में ही है और साधन अवस्था में यह रत्नत्रय मोक्ष के कारण या मार्ग है तो सिद्ध अवस्था में यही रत्नत्रय मोक्षरूप कार्य या साध्य बन जाते हैं। जिस प्रकार 1. कपूर, 2. अजवाइन सत्व, 3. पिपरमेंट से अमृतधारा बनाते हैं। इन तीनों को जब योग्य अनुपात में मिलाते हैं तब वे तीनों अमृतधारा के लिए कारण बनते हैं। क्योंकि ये तीनों धीरे-धीरे पिघलकर अमृतधारा रूप में परिणमन कर लेते हैं। जब अमृतधारा रूप परिणमन कर लेते हैं तब कार्य रूप हो जाते हैं। अमृतधारा बनने के पहले तीनों कारण थे किन्तु अमृतधारा बनने पर कार्य हो गये। इसी प्रकार रत्नत्रय भी मोक्ष के पहले कारण रहते हैं फिर मोक्ष में स्वयं कार्यरूप परिणमन कर लेते हैं। पानी से बर्फ बनती है पानी ठंडा होते-होते जब हिमांक तक ठंडा हो जाता है तब पानी ही बर्फ रूप में परिणमन हो जाता है। बर्फ बनने के पहले जो पानी बर्फ के लिए कारण था बर्फ बनने के बाद वह पानी बर्फ कार्य रूप में परिणमन हो गया। इसी प्रकार व्यवहार रूप भेद रत्नत्रय निश्चय रूप अभेद रत्नत्रय के लिए कारण है और भेद रत्नत्रय साधन अवस्था में कारण है तो सिद्ध अवस्था में कार्य रूप हो जाते है।

## सम्यग्दर्शन का स्वरूप

**जीवादिसद्दहणं सम्मत्तं रूपमप्पणो तं तु।**

**दुरभिणिवेस विमुक्कं णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि।। (41)**

Samyaktva (perfect faith) is the belief in Jiva etc. That is a

quality of the soul, and when this arises, Gyan (knowledge), being free from errors, surely becomes perfect.

जीव आदि पदार्थों का जो श्रद्धान करना है वह सम्यक्त्व है और वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है और इस सम्यक्त्व के होने पर संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय इन तीनों दुरभिनिवेशों से रहित होकर ज्ञान सम्यक्ज्ञान कहलाता है।

आचार्यश्री ने इस गाथा में निश्चय एवं व्यवहार सम्यक्त्व का स्वरूप और उसके कार्य का प्रतिपादन किया है। ''**जीवादीसद्दहणं सम्मतं**'' अर्थात् जीवादि षट् द्रव्य या सप्त तत्त्व या नव पदार्थ का श्रद्धान व्यवहार सम्यग्दर्शन है और ''**रूवमप्पणो तं तु**'' वह सम्यक्त्व आत्मा का स्वरूप है यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। ''**दुरभिणिवेसविमुक्के णाणं सम्मं खु होदि सदि जम्हि**'' अर्थात् सम्यग्दर्शन होने पर ज्ञान संशय विपर्यय एवं अनध्यवसाय से रहित होकर सम्यग्ज्ञान हो जाता है। ऐसा प्रतिपादन करके आचार्यश्री ने सम्यग्दर्शन की महिमा का वर्णन किया है क्योंकि सम्यग्दर्शन के बिना मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान कुज्ञान रहते हैं। सम्यग्दर्शन के बिना मिथ्यादृष्टि के 11 अंग 9 पूर्व का ज्ञान भी मिथ्याज्ञान ही रहता है। केवल ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से ज्ञान सम्यक् नहीं होता है, ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के विपुल ज्ञान भी मिथ्याज्ञान रहेगा। सम्यग्दर्शन सहित थोड़ा-सा ज्ञान भी सम्यक् हो जाएगा इसलिए ज्ञान एवं चारित्र में जो सम्यक्पना है वह वस्तुतः दर्शन मोहनीय कर्म के उपशम, क्षय एवं क्षयोपशम से आता है न कि केवल ज्ञानावरणीय कर्म एवं चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से आता है।

जैसे बिन्दुओं से रेखा का प्रारंभ होता है। एक से गणना का प्रारंभ होता है, उसी प्रकार मोक्षमार्ग का प्रारंभ सम्यग्दर्शन से होता है। बिन्दु बिना रेखा, बीज बिना अंकुर की उत्पत्ति, स्थिति एवं वृद्धि नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन बिना मोक्षमार्ग की उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि नहीं हो सकती है। महान् तार्किक दार्शनिक संत समंतभद्र स्वामी कहते हैं कि-

**विद्या वृत्तस्य संभूति स्थिति वृद्धि फलोदयाः।**
**न सन्त्य सति सम्यक्त्वेः बीजाभावे तरोरिव।। (31)** रत्नकरण्ड श्राव.

जिस प्रकार बीज के बिना वृक्ष की उत्पत्ति नहीं हो सकती, उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की भी उत्पत्ति नहीं हो सकती।

**दर्शनं ज्ञान चारित्रात्साधिमानमुपाश्नुते।**
**दर्शनं कर्णधारं तन्मोक्षमार्गे प्रचक्ष्यते।। (31)** रत्नकरण्ड श्राव.

जिस प्रकार किसी भी नाव का जलाशय के उस पार जाना खेवटिया के अधीन होता है, उसी प्रकार संसारी जीव का संसार समुद्र को पार करना सम्यग्दर्शन के आधीन होता है। यद्यपि मोक्षमार्गपना ज्ञान और चारित्र में भी है, परन्तु सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र में सम्यक्पना रूप नहीं होता। इसलिए मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्रधानता बतलाई गई है।

सम्यग्दर्शन को प्रधानता देने का कारण यह है कि बिना सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र सुज्ञान, सुचारित्र न होकर कुज्ञान और कुचारित्र होते है, जिससे मोक्षमार्ग नहीं बनता है। लक्ष्यविहीन पथिक का गमन, गमन नहीं है किन्तु भटकाव है। लक्ष्य के विपरीत दिक् में जितना भी गमन हो, वह गमन लक्ष्य प्राप्ति के लिए अकिंचित्कर ही रहेगा। मान लीजिये दिल्ली स्थित एक व्यक्ति का लक्ष्य कश्मीर जाना है। मान लिया जाये कि दिल्ली से कश्मीर की दूरी 1000 किमी. है। यदि वह 10 बजे एक गाड़ी में बैठकर 1 घंटा प्रति 100 किमी. गति से वह दक्षिण की ओर प्रयाण करेगा तब वह 11 बजे कश्मीर से 1100 किमी. दूर हो जायेगा। 12 बजे 1200 किमी. दूरी पर होगा। जितना-जितना वह आगे बढ़ेगा, उतना-उतना वह लक्ष्य से दूर होता है, क्योंकि कश्मीर दिल्ली से उत्तर की ओर है और उसका प्रयाण दक्षिण दिक् की ओर हो रहा है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन रहित उसका मोक्ष प्रयाण मोक्ष में पहुँचाने के लिए समर्थ नहीं होगा। अतः श्रद्धान रूपी लक्ष्य बिन्दु पहले ही निश्चित होने चाहिए।

अमृतचंद्र सूरि जो कुंदकुंद साहित्य के प्रथम टीकाकार थे। वे पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में मोक्षमार्ग में सम्यक्त्व की प्रथम भूमिका का वर्णन करते हुए कहते हैं-

**तत्रादौ सम्यक्त्वं समुपाश्रयणीयमखिलयत्नेन।**
**तस्मिन्सत्येव यतो भवति ज्ञान चरित्रं च।। (2)** पुरुषार्थ सिद्धि उपायः

रत्नत्रय रूपी मोक्षरूप से सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन का अखिल प्रयत्नपूर्वक आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान एवं चारित्र सम्यक् बनते हैं, जिससे मोक्षमार्ग बनता है।

मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन की प्राथमिकता एवं प्राथमिक भूमिका का प्रतिपादन

करते हुए भगवान् कुंदकुंद आचार्य देव निम्न प्रकार बताते हैं-

**''दंसण मूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।''** अष्टपाहुड दंसणपा

अनंत ज्ञानी अनंत जिनेन्द्र ने अपने शिष्यों को बताया है कि धर्म रूप वृक्ष की मूल सम्यग्दर्शन है।

**जो दंसणेसु भट्ठा णाणभट्ठा चरित्त भट्ठा य।**
**एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति।। (8)**

जो सम्यग्दर्शन से रहित है वह ज्ञान से भी एवं चरित्र से भी रहित है। दर्शनभ्रष्ट महाभ्रष्ट है।

जो स्वयं भ्रष्ट है वह दूसरे को भी भ्रष्ट करते हैं। जो स्वयं मिथ्यादृष्टि है वह दूसरों को भी मिथ्यादर्शन के उपदेश की प्रेरणा देते हैं जिससे अन्य लोग भी मिथ्यादर्शन का अनुसरण करके भ्रष्ट होते हैं।

**जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।**
**तह जिणदंसणभट्ठा मूल विणट्ठा ण सिज्झंति।। (10)**

जैसे वृक्ष की मूल नष्ट हो जाने से वृक्ष की शाखा-प्रशाखा की वृद्धि नहीं हो सकती है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन नष्ट होने से रत्नत्रय स्वरूपी वृक्ष भी नष्ट हो जाता है जिससे मोक्षरूप फल की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् मोक्ष नहीं मिलता।

सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान तथा चरित्र मोक्ष के लिए कारण न होने से वे दोनों के लिए भार स्वरूप है तथा-

**शमबोधवृत्त तपसां पाषाणस्येव गौरर्वे पुसः।**
**पूज्य महामणेरिव तदेव सम्यक्त्व संयुक्तम्।। (15)** आत्मानुशासन

पुरुष के सम्यक्त्व से रहित शांति, ज्ञान, चारित्र और तप इनका महत्व पत्थर के भारीपन के समान व्यर्थ है। परंतु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है तो वह मूल्यवान् मणि के महत्व के समान पूजनीय है।

इसलिए भगवती आराधना में सम्यग्दर्शन की उपलब्धि विश्व की संपूर्ण उपलब्धि से भी श्रेष्ठ बताया है।

**''समद्दंसण लंभो वरं खु तिलोक्क लंभादो।''** भगवती आराधना 742

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तीन लोक के ऐश्वर्य से भी श्रेष्ठ है।

## नादंसणिस्य नाणं

**नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।**

**णत्थि अमोक्खस्स णिव्वाणं।।** उत्तराध्ययन 28/30

सम्यग्दर्शन के अभाव में ज्ञान प्राप्त नहीं होता, ज्ञान के अभाव में चारित्र के गुण नहीं होते, गुणों के अभाव में मोक्ष नहीं होता और मोक्ष के अभाव में निर्वाण शाश्वत-आत्मानंद प्राप्त नहीं होता।

**''नत्थि चरित्तं सम्मत्तं विहूणं''** उत्तराध्ययन 28/29

# रत्नत्रय ही है मेरा परम-वैभव

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : पायोजी मैंने राम-रतन धन पायो.....)**

पायोजी! मैंने रत्नत्रय धन पायो!

जिस रत्न हेतु चक्रवर्ती भी चौदह रत्न वैभव त्यागो।। (ध्रुव)

आत्म श्रद्धान है पहला रत्न, स्वयं को मानूँ मैं शुद्ध-बुद्ध।

द्रव्य भाव नोकर्म से रहित, मैं हूँ सच्चिदानंद रूप।।

व्यवहार से श्रद्धान मेरा षट् द्रव्य, नव पदार्थ का स्वरूप।

इनके कारणभूत मेरा श्रद्धान, सच्चे देव-शास्त्र गुरु रूप।। (1) पायोजी...

यह ही श्रद्धान यह ही प्रतीति, यह ही है आत्मविश्वास।

लौकिक जनों के आत्मविश्वास से, होता है पूर्ण विशेष।।

लौकिक जन तो शरीर मन (पर) मैं, करते है आत्मविश्वास।

मैं तो शरीर व मन से परे, करूँ स्व चैतन्य विश्वास।। (2) पायोजी...

द्वितीयरत्न है सम्यग्ज्ञान जो, आत्मविश्वास के अनुकूल।

ज्ञान-ज्ञेय, हेय-उपादेय जानकर, आत्मा को करूँ अंगीकार/(स्वीकार)।।

इसी हेतु भेद-विज्ञान करूँ, अणु से लेकर लोकालोक।

विज्ञान से लेकर आध्यात्मिक तक, स्व-मत परमत (व) लौकिक।। (3) पायोजी...

श्रद्धान-ज्ञानयुक्त भावना करूँ, शक्ति अनुसार आचरण।

पर-स्वरूप व विभाव त्याग हेतु, करूँ सम्यक् आचरण।।

राग-द्वेष मोह काम क्रोध त्यागूँ, ईर्ष्या तृष्णा संक्लेश।
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्याग (कर), करूँ आत्मा को विशुद्ध।। (4) पायोजी...

समता शांति निस्पृहता धरूँ, करूँ मैं मौन साधना।
आत्म विशुद्धि आत्मानुभव करूँ, पाने हेतु ज्ञान चेतना।।
तीन रत्नों को मैं अभेद रूप से, स्वयं में ही करूँ अनुभव।
रत्नत्रय ही है मेरा स्वरूप, 'कनक' का परम शुद्ध भाव।। (5) पायोजी...

नन्दौड़, दिनांक 07.12.2015, प्रातः 7.47

# सिद्ध भगवान् से मुझे प्राप्त परम सुख के सूत्र

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : भावे वन्दू तो अरिहंत....., तुम दिल की धड़कन.....)**

तन-मन-अक्ष से रहित भगवान्, भोगोपभोग रिक्त सिद्ध भगवान्।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि रहित होकर, अनंत सुख सम्पन्न सिद्ध भगवान्।। (ध्रुव)

इसी से सिद्ध (होता) सुख आत्म स्वभाव, शरीर मनादि तो है जड़ स्वभाव।
जड़ में न होता सुख वह तो अजीव रूप, अजीव में न होता सुख चैतन्य भाव।। (1)

सिद्ध का सुख तो पूर्ण चैतन्यमय, चैतन्य ही होता सुख ज्ञान स्वभाव।
सिद्ध का सुख अतः आत्म आश्रित, पराधीन रहित स्व आधीन युक्त।। (2)

राग द्वेष मोह रिक्त होते हैं सिद्ध, ईर्ष्या घृणा तृष्णा से भी रहित सिद्ध।
काम क्रोध मद रिक्त होते हैं सिद्ध, अनंत सुख सम्पन्न होते सिद्ध।। (3)

इसी से सिद्ध होता सुख विभाव रिक्त, विभाव तो विकृति न आत्म स्वभाव।
विभाव शून्य से होता स्वभाव प्रगट, स्वभाव ही है सुख रूप विभाव दुःख।। (4)

जन्म-जरा/(मृत्यु) रोग मुक्त सिद्ध स्वरूप, क्षुधा तृषा रूजा मुक्त सिद्ध स्वरूप।
खाना पीना सोना रिक्त सिद्ध स्वरूप, अनंत सुखमय सिद्ध स्वरूप।। (5)

इसी से सिद्ध होता सुख न जन्मादि रूप, खाना पीना सोना भी न सुख स्वरूप।
ये सभी तो संयोग वियोग रूप, सुख तो आत्म स्वभाव ध्रुव स्वरूप।। (6)

ख्याति पूजा यशोगान प्रसिद्धि परे, अर्चना वंदना व प्रार्थना परे।

स्तुति प्रणाम नमोऽस्तु भी परे, अनंत सुखी सिद्ध स्तवन परे।। (7)
इसी से सिद्ध (होता) सुख अपेक्षा परे, अनुशंसा प्रशंसा प्रोत्साहन परे।
प्रशस्ति पुरस्कार समर्थन परे, आत्मलीन स्वानुभव (है) सुख विकल्प परे।। (8)
सिद्ध भगवान् से मुझे मिले सुख के सूत्र, स्वाधीनता आत्माधीनता ही परम सुख।
पवित्रता समता व शांति ही सुख, 'कनकनन्दी' का शुद्ध स्वभाव ही सुख।। (9)

नन्दौड़, दिनांक 08.12.2015, रात्रि 7.35

# मेरी कहानी जो माँ जिनवाणी से जानूँ

**-आचार्य कनकनन्दी**

**रूपान्तरकर्त्ता-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

**(चाल : माँ मुझे अपने आँचल में छिपा ले.....)**

माँ मुझे सुनाओ मेरी कहानी...मेरे 'मैं'/(स्व, निज) की कहानी...
सर्वज्ञ प्रभु ने है जो जानी...(स्थायी)...
मेरी ये व्यथा अन्य कोई न जाने...तुझे छोड़कर अन्य कोई न जाने...
वैज्ञानिक-दार्शनिक/(कथाकार) भी न जाने...
मुझे न सुनना/(चाहिए) अन्य की कहानी...मेरे मैं की कहानी...(1)...
मेरी कहानी हेतु कहो अन्य कहानी...मुझ संबंधी कहो है आपकी जुबानी...
समय नहीं सुनने को अन्य की कहानी...
मेरी कहानी (तो) अभी तक पूरी न जानी...मेरे निज की कहानी...(2)...
जिनवाणी माँ मेरी सुना रही कहानी...अनादि अनंत भवों की कहानी...
मेरा अस्तित्व है अनादि कालीन...
अनंत तक रहेगी अस्तित्व (की) कहानी...मेरे स्व की कहानी...(3)...
चारों गतियों की ये मेरी कहानी...लाख चौरासिया योनि की कहानी...
पञ्च परिवर्तन की दीर्घ ये कहानी...
उत्थान-पतन की ये मेरी कहानी...मेरे निज की कहानी...(4)...
उत्सर्पिणी के काल में भी मैं रहा हूँ...अनंत अवसर्पिणी काल में भी रहा हूँ...
भोगभूमि में भी व कर्मभूमि में...

अनंतानंत काल चक्र (में) घुमानी/(घुमाई)...मेरे स्व की कहानी...(5)...
हर जीवों से मेरा हुआ संबंध...जन्य-जनक भाई-बंधु संबंध...
शत्रु-मित्र आदि हर संबंध...
भक्ष-भक्षक संबंध की भी ये कहानी...मेरे निज की कहानी...(6)...
ऐसी विचित्र है ये मेरी कहानी...नाटक-सिनेमा से परे ये कहानी...
काल्पनिक-तिलस्मी से भी परे कहानी...
उत्थान-पतन/(विकास-विनाश) की ये मेरी कहानी...मेरे मैं की कहानी...(7)...
सभी खाया व सभी पीया भी...भोग-उपभोग सभी किया भी...
किन्तु अभी तक एक काम न किया भी...
स्वयं की उपलब्धि अभी तक न करानी/(कराई)...मेरे स्व की कहानी...(8)...
अभी जानूँ स्वयं को तथाहि मानूँ...स्वयं की प्राप्ति हेतु प्रयास करूँ...
मैं तो शुद्ध-बुद्ध-आनंद स्वरूपी...
राग-द्वेष-मोह-काम रिक्त कहानी...मेरे निज की कहानी...(9)...
इसी हेतु सतत प्रयत्नरत हूँ...ध्यान-अध्ययन इसी हेतु करूँ हूँ...
समता-शांति भी इसी हेतु धारूँ...
कथा करे 'कनक' स्वयं की सदा ही...मेरे मैं की कहानी...(10)...
माँ मुझे सुनाओ मेरी कहानी...मेरे मैं/(स्व, निज) की कहानी...
सर्वज्ञ प्रभु ने है जो जानी...

नन्दौड़, दिनांक 08.12.2015, मध्याह्न 3.05

**काव्यमय अभिनय/एकांकी**

# मेरी भविष्यवाणी...जिनवाणी माँ की जुबानी

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : माँ मुझे अपने आँचल में छिपा ले....., बहुत प्यार करते हैं.....)**
माँ मुझे सुनाओ मेरी भविष्यवाणी...उत्थान/(विकास) कहानी...
सर्वज्ञ देव से जो जानीऽऽऽ...(स्थायी)...

भविष्यवेत्ता व विज्ञानी जन...नहीं जानते मेरा भावी जीवन...

मैं तो अमूर्तिक चेतन रूपऽऽऽ
आत्म विकास की बताओ कहानी...उत्थान कहानी...(1)...

भौतिकमय ही मेरा नहीं विकास...भौतिक परे मेरा आत्म विकास...
आत्म विशुद्धि की भविष्यवाणीऽऽऽ
उसे बता रही है श्री जिनवाणी...उत्थान कहानी...(2)...

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्रमय...तेरा है स्वरूप इसे करो विकास...
भावी निर्माण ही तेरा सच्चा प्रयासऽऽऽ
तेरा प्रयास ही तेरी भविष्यवाणी...उत्थान कहानी...(3)...

इसी हेतु करो राग-द्वेष-त्याग...मद मोह माया को करो विनाश...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि त्यागोऽऽऽ
विभाव त्यागकर स्वभाव भजो...उत्थान कहानी...(4)...

सतत करो है तू आत्म विशुद्धि...समता शांति व निस्पृह वृत्ति...
ध्यान-अध्ययन व आत्म चिन्तनऽऽऽ
निर्विकार व वीतराग विज्ञानी...उत्थान कहानी...(5)...

'कनक' को यह सब स्वीकार हुआ...श्रद्धा व प्रज्ञा से इसे स्वीकारा...
भावी का पूर्वाभास अभी हो रहा हैऽऽऽ
अंकुर से वृक्ष के भान समानी...उत्थान कहानी...(6)...

नन्दौड़, दिनांक 09.12.2015, रात्रि 7.05

# मैं प्रशंसनीय गुणी बनूँ व गुण-गुणी की प्रशंसा करूँ

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : तुम दिल की....., छोटी-छोटी गैया.....)**

प्रशंसनीय गुणी मैं भी बनूँ, गुण गुणी की प्रशंसा भी करूँ।
वात्सल्य प्रमोद भाव मैं धरूँ, स्वयं को प्रसन्न व अन्य को करूँ।।

धर्म में इसे कहते अनुमोदना, गुणानुराग स्तुति (प्रार्थना) वंदना।
पूजा आरती या अर्चना सम्मान, विनय बहुमान गुण कीर्तन।।

पूजनीय प्रति होती प्रार्थना वंदना, पूजा आरती या स्तुति अर्चना।

अन्य गुणी सत्कर्मी प्रति होती प्रशंसा, सभी सत्कर्म में अनुमोदना।।

**श्लोक- स्तुतिः पुण्य गुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्न धीः।**
**निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम्।।** (सहस्त्रनाम)

स्तुति होती है पुण्य गुणों की कीर्ति स्तोता होता है भव्य प्रसन्न बुद्धि।
निष्ठितार्थ पूज्य होते हैं स्तुत्य फल मिलता है नैश्रेयस सुख।।

**श्लोक- उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।**
**भक्तेः सुन्दर रूपं स्तवनात्कीर्ति स्तपोनिधिषु।।** (25 रत्नक)

उच्चगोत्र मिले प्रणाम करने से भोग मिले है दान देने से।
पूजा होती है उपासना से सुंदर रूप भी मिले भक्ति से।।

कीर्ति मिलती है स्तवन करने से, तीर्थंकर प्रकृति बंधे वैयावृत्ति से।
ये सब फल मिले (हैं) गुरु भक्ति से, गुण प्रशंसा व अनुमोदना से।।

आहारदाता को जो फल मिलता, प्रशंसाकर्त्ता को भी (वह) फल मिलता।
आदिनाथ भगवान् के उदाहरण ज्ञेय, श्रेयांस-भरत के दृष्टांत ज्ञेय।।

अन्य गुण गुणी व सत्कर्मकर्त्ता की, प्रशंसा अनुमोदना करने की।
होते हैं लाभ स्व-पर अन्य के, प्रोत्साहन तथा प्रेरित होने के।।

प्रोत्साहनकर्त्ता भी बनते प्रसन्न, प्रफुल्लित होते तन व मन।
उन्हें भी मिलता है आदर सम्मान, सेवा सहयोग एकता बहुमान।।

प्रशंसनीय के भी बढ़े (है) आत्मविश्वास, नेगेटिव थिंकिंग का होता है नाश।
प्रेरित व प्रोत्साहित भी वे होते, उत्तम कार्य हेतु प्रयास करते।।

तनाव भय से भी (वे) निवृत्त होते, सुखद अनुभव से समृद्ध होते।
कृतज्ञ व सहयोगी भी बनते, वैर-विरोध व ईर्ष्या भी त्यागते।।

इत्यादि होते हैं अनेक लाभ, इसलिए मैं करता हूँ सही तारीफ।
आशीर्वाद पुरस्कार भी मैं देता, 'कनकनन्दी' को गुणी/(गुण) ही भाता।।

रायचन्द व चापलूस नहीं बनूँगा, हतोत्साहित भी नहीं करूँगा।
ठगना व प्रलोभन नहीं करूँगा, सच्चे-अच्छे प्रामाणिक बनूँगा।।

नन्दौड़, दिनांक 09.11.2015, रात्रि 8.27 व 10.10

# मैं न निंद्य बनूँ न निन्दा करूँ
## (गुणी व गुण प्रशंसक मैं बनूँ)

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(राग : छोटी-छोटी गैया.....)**

निंद्य न बनूँगा निन्दा न करूँगा, बनूँगा सुगुणी व गुणग्राही।
मेरा स्वभाव तो सच्चिदानंदमय, निर्मल निर्विकार समतामय।। (1)

सभी के गुण-दोष जानते तीर्थंकर, तथापि पापी से भी न करते घृणा।
किसी की भी निन्दा अपमान न करते, नहीं करते द्वेष न करते हत्या।। (2)

हर जीव (के) कल्याण हेतु करते उपदेश, दोष दूर हेतु भी करते (है) निर्देश।
पाप व पापी को भी जानते पूर्णतः, रहते वीतरागी व शांत निर्लिप्त।। (3)

ऐसा ही अन्य सभी धार्मिक भी करते, गणधर से लेकर श्रमण तक।
सुदृष्टि से लेकर श्रावक व सज्जन (तक), स्व-भूमिका अनुसार यथायोग्य।। (4)

सम्यग्दृष्टि के होते हैं अनेक गुण, दोष ढाँकना होता है उपगूहन।
दोष दूर करना होता है स्थितिकरण, वात्सल्य होता है प्रभावना अंग।। (5)

इसके बिना कोई न होता है धार्मिक, न धर्म होता है धार्मिक बिना।
गुणों का समूह ही होता है गुणी, गुणों से रहित होता है दुर्गुणी।। (6)

सद्वृत्तों का होता गुण कथन, मनन-चिन्तन व पूजन वंदन।
आरती-प्रार्थना स्तुति अर्चना, वंदे तद्गुणलब्धये आराधना।। (7)

इसी से प्रमुदित होता है मन, गुण गुणी में प्रमुदित मन।
जिससे पाप कर्म होता निवारण, सातिशय पुण्य का (भी) होता बंधन।। (8)

दोष कथन में होता मौन धारण, अपरश्रावी यह गुण महान्।
इसी में समाहित क्षमा सहिष्णु गुण, ईर्ष्या द्वेष घृणा भाव शून्य।। (9)

गुप्त रहस्यों का नहीं कथन गुण, सत्यव्रत व भाषा समिति गुण।
वचन गुप्ति हित मित प्रिय वचन, अद्वेषकारी व अकलह वचन।। (10)

निंदा/(दोष कथन) से होता उक्त गुणों का नाश, पृष्ट माँस भक्षण का लगता दोष।
गुणनाश से होता धर्म विनाश, मिथ्यात्व और पापों का होता प्रवेश।। (11)

निंदा (फल) से श्रीपाल बना कुष्ट रोगी, अपमानित हुई अंजना सुंदरी।
जलकर मरे (भी) साठ सहस्र पापी, होते हैं निन्दित व रोगी।। (12)
अतएव निन्दा मैं किसी की न करूँ, दोष दूर हेतु ही कथन करूँ।
वात्सल्य से योग्यजन को कहूँ, स्व-परहित 'कनक' मैं चाहूँ।। (13)

नन्दौड़, दिनांक 08.11.2015, रात्रि 9.18

(यह कविता विजयलक्ष्मी-नितिन भाई सीपुर वालों के कारण बनी।)

**दोष कथक जिनधर्मी नहीं-**

**आयरियाणं वीसत्थदाए भिक्खु कहेदि सगदोसे।**
**कोई पुण णिद्धम्मो अण्णेसिं कहेदि ते दोसे।। (490)** भ.आ.

भिक्षु विश्वासपूर्वक अपने दोषों को आचार्यों से कहता है। कोई आचार्य जो जिन भगवान् के द्वारा कहे गये धर्म से भ्रष्ट होता है वह भिक्षु के द्वारा आलोचित दोषों को दूसरों से कह देता है कि इसने यह अपराध किया है अर्थात् ऐसा करने वाला आचार्य जिनधर्म से बाह्य होता है।

**दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना-**

**तेणं रहस्सं भिदंतएण साधु तदो य परिचत्तो।**
**अप्पा गणो य संघो मिच्छत्ताराधणा चेव।। (491)**

उस आलोचित दोष को प्रकट करने वाले आचार्य ने ऐसा करके उस साधु का ही त्याग कर दिया। क्योंकि उसने अपने चित्त में यह विचार नहीं किया कि मेरे द्वारा इसके दोष प्रकट कर देने पर वह लज्जित होकर दुःखी होगा अथवा आत्मघात कर लेगा, या क्रुद्ध होकर रत्नत्रय को ही छोड़ देगा तथा उस आचार्य ने अपनी आत्मा का त्याग किया, गण का त्याग किया, संघ का त्याग किया। इतना ही नहीं उसके मिथ्यात्व की आराधना का दोष भी होता है।

**दोष कथन से मिथ्यात्व की आराधना क्यों?**

**जदि धरिसणमेरिसयं करेदि सिस्सस्स चेव आयरिओ।**
**धिद्धि अपुट्ठधम्मो समणोत्ति भणेज्ज मिच्छजणो।। (496)**

यदि आचार्य अपने शिष्यों को ही इस प्रकार दोष प्रकट करके दोषी करते हैं तो इन अपुष्ट धर्म वाले श्रमणों को धिक्कार है ऐसा मिथ्यादृष्टि लोग कहेंगे।

**इच्चेवमादिदोसा ण होंति गुरुणो रहस्सधारिस्स।**
**पुट्ठेव अपुट्ठे वा अपरिस्साइस्स धीरस्स।। (497)**

जो आचार्य पूछने पर अथवा बिना पूछे शिष्य के द्वारा प्रकट किये दोषों को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य को दूसरों से नहीं कहता वह रहस्य गुप्त रखने वाला अपरिश्रावी होता है और उसे ऊपर कहे हुए दोष जरा भी नहीं छूते।

# अनुभवात्मक प्रतिप्रश्न से मुझे प्राप्त लाभ

## (जिज्ञासा रूपी अंतरंग तप के अनेक लाभ)

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की धड़कन.....)**

प्रतिप्रश्नों से मिलते है लाभ अनेक, स्व-पर अन्य को भी लाभ अनेक।
पृच्छना रूपी होता अंतरंग तप, अन्य को जानने का यह श्रेष्ठ स्वरूप।। (1)

धवल जयधवला व तर्क शास्त्रों में, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा (शिक्षा) शास्त्रों में।
सत्यासत्य गुण-दोष जानने हेतु, प्रश्न किया जाता भाव जानने हेतु।। (2)

न्याय करने हेतु किया जाता है प्रश्न, तत्त्व जिज्ञासा हेतु किया जाता है प्रश्न।
समथ-असमर्थ (जानने) हेतु होता है प्रश्न, उद्देश्य (जानने) हेतु किया जताा है प्रश्न।। (3)

'अथातो तत्त्व जिज्ञासा' से बने दर्शन, ज्ञान-विज्ञान का होता विकास।
क्यों? कैसे? क्या? आदि इसके रूप (चिह्न), आत्मा की जिज्ञासा है परम स्वरूप।। (4)

हजारों प्रश्न किया हूँ मैं अभी तक भी, धर्म-दर्शन-विज्ञान विविध प्रकार भी।
आत्मा-परमात्मा से अणु ब्रह्माण्ड तक, कानून राजनीति से मनोविज्ञान तक।। (5)

जानने हेतु विधेय प्रश्न किया पूर्व में, परीक्षार्थे प्रश्न कर रहा अभी मैं।
अन्य की योग्यता का हो रहा (इसी से) ज्ञान, अन्य के भाव उद्देश्य का हो रहा भान।। (6)

गुण-दोष-कमियों का हो रहा ज्ञान, पात्र-अपात्र का भी हो रहा भान।
विविध शिक्षा व उपलब्धियाँ हो रही, अध्यापन प्रणाली में व्यापकता आ रही।। (7)

प्रश्न-कर्त्ता श्रोता भी सतर्क हो रहे हैं, प्रमाद व आलस्य भी छोड़ रहे है।
स्वयं की कमियों को भी जान रहे है, उत्सुकता व जिज्ञासा भी बढ़ रही है।। (8)

मनमाना उद्दण्डता भी छोड़ रहे है, अहंकार व संकीर्णता (भी) छोड़ रहे है।

विनम्र सत्यग्राही बन रहे है, एकाग्रता से भी मुझे सुन रहे है।। (9)

अतः समय (व) पुरुषार्थ मेरा बच रहा है, ध्यान-अध्ययन भी मेरा बढ़ रहा है।
वाद-विवाद-तनाव आदि न होते है, समता से 'कनक' आगे बढ़ रहा है।। (10)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 19.12.2015, रात्रि 7.37

# विज्ञान व गणित से भी मुझे मिल रहे हैं लाभ

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : भातुकली....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया....., दुनिया हँसे.....)**

विज्ञान से (जो) मुझे मिले ज्ञान...उससे बढ़ा मेरा शोध ज्ञान...
जिज्ञासु बनना व उदार बनना...समन्वय व समीक्षा करना...(स्थायी)

निष्पक्ष होना व परीक्षा करना...सत्यग्राही व कल्पना करना...
कार्य-कारण संबंध जोड़ना...समस्याओं का समाधान खोजना...

अनेकान्त को प्रयोग में लाना...अणु शक्ति का ज्ञान करना...
कर्म सिद्धान्त को समझने हेतु...सहयोग जिनोम सिद्धांत/
(D.N.A., R.N.A.) से/(का) लेना...(1)...

षट् लेश्या को समझने हेतु...मनोविज्ञान से सहयोग लेना...
अध्यात्म को समझने हेतु...परामनोविज्ञान से सहयोग लेना...

पर्यावरण सुरक्षा सिद्धांत से...अहिंसा का व्यवहार ज्ञान मिले...
शाकाहार स्वास्थ्य रक्षा ज्ञान...इन सबसे व्यापक ज्ञान मिले...(2)...

आत्मविश्वास व सकारात्मक ज्ञान...आत्म विश्लेषण व प्रगति ज्ञान...
शोध-बोध व अनुभव ज्ञान...आत्म गौरवपूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान...

इसे सुव्यवस्थित गणित ज्ञान करता...अलौकिक गणित सम्वृद्ध बनाता...
व्यापक उदार सहिष्णु बनाता...निर्णय क्षमता अति तीव्र बनाता...(3)...

ज्ञान से ज्ञान बढ़ता ही जाता...अणु से ब्रह्माण्ड का ज्ञान होता...
अन्तर्सम्बन्ध का ज्ञान भी होता...एकीकृत सिद्धांत का ज्ञान होता...

इसी से श्रद्धा-प्रज्ञा दृढ़ होती...अध्यात्म के प्रति गरिमा बढ़ती...
भारतीय संस्कृति में गौरव होता...'कनक' का सर्वोदय ही होता...(4)...

वैज्ञानिकों से प्रेरणा मिलती...वे भौतिकवादी हम आध्यात्मी...
उनसे भी अधिक श्रेष्ठ-ज्येष्ठ होना...ज्ञानी-ध्यानी व पावन होना...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 11.12.2015, रात्रि 9.55

(देश-विदेश के वैज्ञानिक साहित्य व विदेशी वैज्ञानिक चैलनों से ज्ञान-प्रेरणा आदि प्राप्त लाभ का वर्णन इस कविता में है।)

## मेरी ज्ञानदान की भावना

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : जिस देश में गाँधी....., छू लेने दो.....)**

वह ज्ञान नहीं देना चाहता...मैं विश्व के मानव को...
जिस ज्ञान को देश-विदेशों के...स्कूल-कॉलेजों में पढ़ते/(पढ़ाते) है...
वह ज्ञान मैं देना चाहता हूँ...जिस ज्ञान से विश्व में हो मंगल...
वह ज्ञान नहीं देना चाहता...जिस ज्ञान से बने संकीर्ण कट्टर...
वह ज्ञान ही देना चाहता हूँ...जिससे सब बने पावन-उदार...(1)...

वह ज्ञान नहीं देना चाहूँ...जिसे सामान्य जन जानते/(मानते) हो...
वह ज्ञान ही देना चाहता हूँ...जो उभयलोक हितकारी हो...
स्व-पर-विश्व हितकारी सह...सत्य शिव सुन्दर हो...(2)...
वह ज्ञान नहीं देता हूँ मैं...साधु व शिष्य गणों को...
जिस ज्ञान से बढ़े राग-द्वेष...चाहे ख्याति पूजा व लाभ को...
वह ज्ञान देता जिससे बढ़े...ज्ञान-वैराग्य-आत्म उपलब्धि...(3)...

भौतिक ज्ञान से भी परे मैं...देता हूँ नैतिक ज्ञान...
नैतिक से परे धार्मिक ज्ञान...उससे भी परे आत्मिक ज्ञान...
सत्य-समता-शुचिता-शांति...के विकास से होता आध्यात्मिक...(4)...
इसी हेतु नवकोटि से 'कनक'...आत्म साधना में तत्पर (प्रयत्न) है...
शोध-बोध-अनुभव के द्वारा...लेखन व प्रवचन से...
देश-विदेशों में प्रचार द्वारा...विद्वान् वैज्ञानिक शिष्यों से...(5)...

ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 17.12.2015, रात्रि 9.15

# आधुनिक अस्त-व्यस्त-संत्रस्त जीवन की करुण कहानी

**(चाल : बड़ा नटखट है ये कृष्ण कन्हैया.....)**

हाय रे! जीवन आधुनिक वालाऽऽऽ अस्त-व्यस्त-संत्रस्त वालाऽऽऽहोऽऽऽ
शिशु काल से ही तनाव वालाऽऽऽ अंधी दौड़ में दौड़ने वालाऽऽऽहोऽऽऽ
हाय रे जीवन...(स्थायी)...

संकीर्ण लक्ष्य युक्त अनादर्श वालाऽऽऽ संस्कार सदाचार रहित वालाऽऽऽ
नैतिक संस्कृति से रहित वालाऽऽऽ आध्यात्मिक लक्ष्य से रहित वालाऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(1)...

दया दान सेवा से विरहित वालाऽऽऽ समता शांति से रहित वालाऽऽऽ
हिताहित विवेक से रहित वालाऽऽऽ भेड़-भेड़िया चाल चलने वालाऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(2)...

दो-ढाई साल आयु से पढ़ने वालाऽऽऽ तोता रटन्त पाठ रटने वालाऽऽऽ
मातृभाषा से हीन अंग्रेजी वालाऽऽऽ अर्थ व रहस्य हीन रिकार्ड वालाऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(3)...

पढ़ाई कोचिंग व ट्यूशन वालाऽऽऽ मोबाईल बाइक व कंप्यूटर वालाऽऽऽ
यंत्र चालित जीवन तनाव वालाऽऽऽ हँसी खुशी खेल से रहित वालाऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(4)...

सामाजिक संस्कार व श्रम रहितऽऽऽ प्राकृतिक जीवन व प्रकृति रहितऽऽऽ
तन मन अस्वस्थ्य व उदासीन युक्तऽऽऽ आशंका भय आत्महत्या सहितऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(5)...

युवावय में शादी व बेकारी युक्तऽऽऽ फैशन-व्यसन-भोग-उपभोग युक्तऽऽऽ
भ्रष्टाचार मिलावट शोषण युक्तऽऽऽ उद्दण्ड उत्श्रृंखल व संक्लेश युक्तऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(6)...

प्रौढ़-वृद्धावस्था में भी न अध्यात्म युक्तऽऽऽ ध्यान-अध्ययन नहीं समता युक्तऽऽऽ
ईर्ष्या तृष्णा घृणा में संयुक्त चित्तऽऽऽ स्व-परहित हेतु न लगावे चित्तऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(7)...

आत्म शुद्धि करने में न लगाते चित्तऽऽऽ मोह माया में ही होते आसक्तऽऽऽ
मानव जीवन का यह कलंक रूपऽऽऽ आह्वान 'कनक' अतः करे सततऽऽऽ
हाय रे! जीवन...(8)...

ग.पु.कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 22.12.2015, मध्याह्न 3.00

# आधुनिक विश्व मानव की विडम्बनाएँ

**(चाल : बड़ा नटखट है रे! कृष्ण-कन्हैया.....)**

हाय रे! मानव आधुनिक वालाऽऽऽ सत्ता-संपत्ति-डिग्री वालाऽऽऽहोऽऽऽ
फैशन-व्यसन व स्टाइल वालाऽऽऽ अस्त-व्यस्त-संत्रस्त वालाऽऽऽहोऽऽऽ...(ध्रुवपद)...

मोबाईल टी.वी. व कंप्यूटर वालाऽऽऽ इंटरनेट व गाड़ी विमान वालाऽऽऽ
ग्लोबल विलेज में जीने वालाऽऽऽ सौहार्द्र सहयोग से रहित वालाऽऽऽ
हाय रे! मानव...(1)...

साक्षरता डिग्री से सहित वालाऽऽऽ देश-विदेशों को जानने वालाऽऽऽ
अंतरिक्ष यात्रा को करने वालाऽऽऽ आत्म ज्ञान सदाचार रहित वालाऽऽऽ
हाय रे! मानव...(2)...

फ्लैट व बंगला में रहने वालाऽऽऽ सूट-बूट-टाई व हेट वालाऽऽऽ
सिनेरी के फोटो व ट्वाय वालाऽऽऽ प्रदूषणों से संत्रस्त होने वालाऽऽऽ
हाय रे! मानव...(3)...

रेडीमेड फूड ड्रिंक सेवने वालाऽऽऽ बफेल सिस्टम में खाने वालाऽऽऽ
भोग-विलास व आराम वालाऽऽऽ तन-मन रोगों से पीड़ित वालाऽऽऽ
हाय रे! मानव...(4)...

सूचनाओं/(जानकारी) से अपटूडेट होने वालाऽऽऽ विभिन्न घड़ियों से सहित वालाऽऽऽ
आदर्श दैनिकचर्या से विपरीत वालाऽऽऽ अव्यवस्था-दुःखों को झेलने
/(भोगने, पीड़ित) वालाऽऽऽ
हाय रे! मानव...(5)...

निर्मूलीलता/(आकाशबेली) सम परोपजीवी वालाऽऽऽ पानी के बुलबुला सम विकास
/(सुन्दर) वालाऽऽऽ

इन्द्रधनुष-बिजली सम चमक/(अस्थिर) वालाऽऽऽ कोल्हू के बैल सम प्रगति वालाऽऽऽ
हाय रे! मानव...(6)...

हिताहित विवेकी बनो हे! तुमऽऽऽ दया दान त्याग सेवा करो हे! तुमऽऽऽ
परम सत्य स्वात्मा को पाओ तुमऽऽऽ 'कनकनन्दी' का अह्वान सुनो तुमऽऽऽ
हाय रे! मानव...(7)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 23.12.2015, रात्रि 7.35

## एजुकेशनल टेरेरिज्म है कोचिंग सेंटर्स

# अभी भारत की विद्या (शिक्षा) मुक्ति के परिवर्तन में भुक्ति से लेकर मृत्यु के कारण बन रही है!

**(चाल : जब जीरो दिया मेरे भारत ने.....)**

आज क्या हुआ उस भारत को...जो कभी विश्वगुरु कहलाता था...
जिस विद्या से अमृत तत्त्व पाकर...अमर संदेश विश्व को देता था...

लौकिक से लेकर आध्यात्मिक तक...ज्ञान-विज्ञान-शोध सहित था...
चारों पुरुषार्थों से युक्त होकर...आध्यात्मिक विकास भी करता था...(1)...

अभी तो हो रहा विपरीत काम...शिक्षा से लेकर धर्म तक में...
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि/(डिग्री) हेतु...आत्म पतन राष्ट्र में हो रहा...

उद्देश्य अभी विद्या का न है मुक्ति...''सा विद्या या विमुक्तये'' उक्ति...
विपरीत इससे हो रही है मति/(नीति, युक्ति)...सा विद्या या भुक्ति या डिग्री...(2)...

विद्या हेतु होता है शोषण अभी...धन से लेकर समय तक भी...
शोषण होता भी तन व मन का...शील-सदाचार-नीति-नियम भी...

सिखाना समझाना न होता सही...होता है प्रताड़ना-अपमान भी...
दबाव होता है नंबर हेतु भी...परिवार से लेकर समाज तक भी...(3)...

संत्रस्त जिससे होते विद्यार्थी...तनाव उदासीन व विक्षुब्ध भी...
आत्मविश्वास भी होता डाँवाडोल...किंकर्त्तव्यविमूढ़ धैर्यहीन भी...

तन-मन से भी हो जाते अस्वस्थ...निराशा भय से हो जाते संत्रस्त...

जिससे वे बनते फैशनी-व्यसनी...घर से भागते या होते कुगुणी...(4)...

कुछ बेकार होते कुछ नौकर बनते...परिवार समाज से दूर रहते...
विदेशों में जाते वहाँ ही रहते...स्व-राष्ट्र संस्कृति से दूर हो जाते...

कुछ विद्यार्थी आत्महत्या भी करते...अशिक्षित से भी गलत काम करते...
यह आतंकवाद रूप शिक्षा का...कलंक रूप शिक्षित होने का...(5)...

सर्वोदय हेतु चाहिए उत्तम शिक्षा/(विद्या)...उभयलोक हितकारी सुयोग्य शिक्षा/(विद्या)...
साक्षरी होना ही न संपूर्ण शिक्षा/(विद्या)...'कनक' को चाहिए परम शिक्षा/(विद्या)...(6)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 18.12.2015, रात्रि 10.25

**सन्दर्भ-**(भास्कर खास)

(परेश रावल ने संसद में उठाई मांग, ऐसे सेंटर्स पर बैन लगाया जाए)

(हजार करोड़ के कोचिंग कारोबार का दूसरा पहलू ये है कि छात्रों के सुसाइड के केस 60% तक बढ़ गए)।

**नोट-** इस विषय के विशष परिज्ञानार्थे कवि कृतियाँ 1. सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान व 2. संस्कृति शिक्षा व नारी गरिमा आदि शोधपूर्ण कृतियों का अध्ययन करें।

# भारत की समस्याओं के प्रमुख कारण

## (पाश्चात्य तो भारतीय संस्कति मान रहे हैं किन्तु भारतीय स्व-संस्कृति को छोड़ रहे हैं)

**(राग : इक परदेशी....., यमुना किनारे.....)**

भारतीय ज्ञान को पाश्चात्य मान रहे हैं, शोध-बोध करके जान रहे हैं।
भारतीय अभी स्वज्ञान को नहीं जानते, स्व-संस्कृति से विपरीत (भाव) करते।। (1)

भौतिक से परे पाश्चात्य नैतिक हुए, नीति के आगे संवेदनशील भी हुए।
इसीसे (भी) आगे आध्यात्मिक हो रहे हैं, बुद्धि/(मन) से परे आत्मा को मान रहे हैं।। (2)

मिलावट शोषण भी छोड़ रहे हैं, दया-दान-सेवा भी कर रहे हैं।
अश्लील व भ्रष्टाचार छोड़ रहे हैं, व्यापार में भी नैतिक बन रहे हैं।। (3)

सादा जीवन उच्च विचार कर रहे हैं, फैशन-व्यसन को भी छोड़ रहे हैं।

भारतीय शाकाहार वे कर रहे हैं, योग-ध्यान-प्राणायाम कर रहे हैं।। (4)

प्राकृतिक प्रसाधन को (वे) सही मानते, पृथ्वी सुरक्षा हेतु काम करते।
पर्यावरण सुरक्षा-स्वच्छता कर रहे, स्वतंत्रता समान अधिकार मान रहे हैं।। (5)

विश्व शांति-विश्व मैत्री (को) चाह रहे हैं, अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा वे कर रहे हैं।
अणु से लेकर विश्व का शोध कर रहे, भौतिक से परे चेतना का शोध कर रहे।। (6)

इसी से विपरीत भारतीय कर रहे है, शिक्षा-संस्कृति में भी भौतिक बन रहे हैं।
भाव-व्यवहार-लक्ष्य भी संकीर्ण कर रहे, खान-पान-वेशभूषा/
(भाषा) अयोग्य कर रहे।। (7)

व्यापार राजनीति से लेकर धर्म तक में, नहीं है भारतीय आध्यात्मिक संस्कृति।
अतः भारत में है अनेक समस्याएँ, समाधान हेतु 'कनक' संस्कृति चाहिए।। (8)

नन्दौड़, दिनांक 11.11.2015, प्रातः 9.42 (वीर परिनिर्वाणोत्सव)

# बच्चों की सहज शिक्षा पद्धति

**-आचार्य कनकनन्दी**

**(चाल : आल्हा (बुंदेलखण्डी)....., कसमें-वादे.....)**

बच्चे होते सहज गुरु...घमण्डी मानव सीख न पाय...
शिक्षा पद्धति सहज उनकी...कनकनंदी तो शिक्षा पाय...बच्चे होते...(स्थायी)...

अनौपचारिक उनकी शिक्षा...सब बंधन/(सीमा) से मुक्त होय/(हुए)...
बिन पुस्तक व बिन शिक्षक...बिना परीक्षा वे शिक्षा देय/(लहे)...

रटन्त बिना टेस्ट बिना वे...खेल-खेल से सब सीखते/(सिखाते) जाय...
ट्यूशन बिना टेंशन बिना...हँसी-खुशी से सीखते जाय...बच्चे होते...(1)...

प्राकृतिक-सहज उनकी क्रिया...हँसना-खेलना-सीखना आदि...
धूली मिट्टी पेड़ कीट पतंग...पशु-पक्षी-फूल-फल आदि...

देखना सुनना छूना उठाना...तोड़-फोड़कर फिर जुड़ जाय...
दौड़ना कूदना चढ़ना फाँदना...व्यायाम सह शिक्षा सब पाय...बच्चे होते...(2)...

भेद-भाव बिन मिलना-जुलना...जाति-पंथ-मत-भेद न भाव...
धनी-गरीब व ऊँच-नीच बिन...सबसे प्रेम सौहार्द्र रखाय...

ईर्ष्या द्वेष घृणा पक्षपात बिन...समान रूप से सब में भाव...
कूट-कपट लंद-फंद बिन...सरल-सहज सत्य कह जाय...बच्चे होते...(3)...

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि न चाहे...चोरी ठगी मिलावट न कराय/(करे)...
हत्या बलात्कार डाका न डाले...पर अहितकर काम न कराय/(करे)...

बिना साक्षरी सहज रहे वे...बड़े साक्षरी खोटे/(दुर्गुणी) होय...
बड़े भी सीखो बच्चों से गुण...'कनक' बच्चों से सीखत जाय...बच्चे होते...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 02.12.2015, मध्याह्न 2.52

# बच्चों की सहज शिक्षा पद्धति

**मूल रचयिता-आचार्य कनकनन्दी**
**रूपान्तर-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

**(चाल : बच्चे मन के सच्चे.....)**
बच्चे सहज गुरु हैं...घमण्डीजन सीख न पाते...
शिक्षा पद्धति सहज उनकी...कनक तो शिक्षा पाते...बच्चे...(ध्रुव)...

बिन उपचार उनकी शिक्षा...सब बंधन से मुक्त है...
बिन पुस्तक बिन शिक्षक से...बिना परीक्षा शिक्षा ले/(दे)...
बिन रटे व बिना टेस्ट वे...खेल-खेल में सीख जाए...बच्चे...(1)...

बिन ट्यूशन-टेंशन बिना...हँसी-खुशी वे सीखते...
प्राकृतिक सहज क्रिया...हँसना खेलना सीखना है...
धूली मिट्टी पेड़ पतंग...पशु-पक्षी फूल आदि...बच्चे...(2)...

देखना सुनना छूना उठाना...तोड़-फोड़कर फिर जोड़ना...
दौड़ना कूदना चढ़ना फाँदना...व्यायाम सह शिक्षा पाना...
भेद-भाव बिन मिलना जुलना...जाति पंथ भेद न भावे...बच्चे...(3)...

धनी गरीब ऊँच नीच बिन...सबसे सौहार्द्र प्रेम रखे...
ईर्ष्या द्वेष पक्षपात बिना...समभावी वे बने रहे...
कूट कपट लंद-फंद बिन...सहज सत्य कह जाए...बच्चे...(4)...

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि न चाहे...पर अहितकर काम न करे...

बिना साक्षरी सहज रहे वे...बड़े साक्षरी खोट रखे...
बड़े भी सीखो बच्चों से गुण...'कनक' तो सीखते जाए...बच्चे...(5)...

नन्दौड़, दिनांक 02.12.2015, रात्रि 10.05

**(वैवाहिक जीवन की समस्या संबंधी शोधपूर्ण कविता)**

# वैवाहिक जीवन की समस्याएँ

## (मोक्ष हेतु ब्रह्मचर्य की आवश्यकता क्यों?)

**(चाल : आत्म शक्ति.....)**

बाल्यकाल से मैं ब्रह्मचर्य का, शोध-बोध ज्ञान कर रहा हूँ।
मोक्ष प्राप्ति हेतु ब्रह्मचर्य का, महत्व जानना चाहता हूँ।। (स्थायी)

इसके लिए मैं पढ़ा विविध ग्रंथ, आयुर्वेद से लेकर विज्ञान तक।
मनोविज्ञान व कर्मसिद्धांत, सामाजिक ज्ञान व पुराण तक।।

जीव-विज्ञान व गुणस्थान ज्ञान, पशु-पक्षी व कीट-पतंग तक।
वैज्ञानिक टी.वी. प्रोग्राम व, मेरे अनेक शिष्य-शिष्याएँ तक।। (1)

जो कुछ मैंने शोध-बोध किया, उसका वर्णन मैं कर रहा हूँ।
गद्य-साहित्य में तो अधिक किया, अनुभव कुछ यहाँ कर रहा हूँ।।

अब्रह्मचर्य से (होता) द्रव्य-भाव हिंसा, उसका वर्णन किया अन्यत्र।
वेश्या व परस्त्री गमन से हानि, उसका वर्णन किया अन्यत्र।। (2)

इसके अतिरिक्त और भी समस्याएँ, होती है स्व-दार संतोष व्रत में (भी)।
विवाह पूर्व संबंध जोड़ने में, होती है समस्याएँ विवाह में भी।।

धन-जन व्यवस्था हेतु भोजन, बराती व पाण्डाल साज-सज्जा हेतु।
वस्त्र अलंकार गाजा-बाजा हेतु, सम्मान सत्कार दहेज हेतु।। (3)

विवाह अनन्तर भी है समस्याएँ, होती मेल-मिलाप स्नेह सौहार्द्र की।
विचार-विनिमय संस्कार-संस्कृति, की सहयोग व सेवा भी।।

खान-पान रीति-रिवाज वेशभूषा, व भाषा मत-पंथ देश की।
आय-व्यय अधिकार-कर्त्तव्य की, छोटा-बड़ा व दक्ष-अदक्ष की।। (4)

संबंध-निर्वाह मान-सम्मान, लेन-देन व शील-मर्यादा की।

व्यक्ति परिवार पड़ोसी समाज, दोनों परिवार के संबंध की।।

यदि न हुई संतान तो होती है, समस्याएँ भी अनेक विध।
यदि हुई कन्या संतानें तो होती है, समस्याएँ अनेक विध।। (5)

यदि हुई अयोग्य संतान तो, होती है समस्याएँ अनेक विध।
योग्य संतान के पालन-पोषण हतु, होती समस्याएँ अनेक विध।।

स्वास्थ्य व शिक्षा सुरक्षा हेतु भी, होती समस्याएँ अनेक विध।
इसके लिए माता-पिता को करना, होता है विभिन्न काम।। (6)

इसी से होते है संकल्प-विकल्प, जिससे होते है बहु विध क्लेश।
समय-शक्ति साधन धन का, होता अपव्यय मिले न संतोष।।

ध्यान-अध्ययन मनन-चिंतन हेतु, नहीं मिलता है अधिक समय।
समता शांति (एकाग्रता) तृप्ति न होती, न होता है आत्म-संयम।। (7)

जो ब्रह्मचारी व साधु बनकर भी, अहंकार-ममकार को करते हैं।
वे भी यथायोग्य वैवाहिक सम, अनेक समस्याएँ झेलते हैं।।

आत्मविशुद्धि अतः न हो पाती, न हो पाती है संपूर्ण मुक्ति/(आत्म-उन्नति)।
इसी हेतु ही ब्रह्मचर्य चाहिए, 'कनक' पाले (बाल) ब्रह्मचर्य वृत्ति।। (8)

नन्दौड़, दिनांक 19.11.2015, रात्रि 8.15
(यह कविता मणिभद्र के कारण बनी)

# आनंद जीव का प्रमुख गुण व उससे प्राप्त अनंत लाभ

**-आ. कनकनन्दी**

**(चाल : बड़ा नटखट है रे....., आत्मशक्ति से.....)**

आनंद ही जीव का महान् गुणऽऽऽ सच्चिदानंद इसका प्रमाणऽऽऽ होऽऽऽ
हर जीव अतः चाहता सुखऽऽऽ दुःख से हर जीव होता विमुखऽऽऽ होऽऽऽ (ध्रुव)

ज्ञानानंद भी तो इसे ही कहतेऽऽ सहजानंद भी इसे ही कहतेऽऽऽ
परमानंद है जीव का शुद्ध स्वभावऽऽ विषयानंद है जीव का अशुद्ध भावऽऽऽ
आनंद ही...(1)

आनंद से ही जीव का कटता कर्मऽऽ आनंद हेतु ही जीव पालता धर्मऽऽऽ

इसी से विपरीत है दुःख-संक्लेशऽऽ जिससे होता है आस्रव (व) संश्लेष (बंध)ऽऽऽ
आनंद ही...(2)

समता-शांति व आत्म विशुद्धिऽऽ ईर्ष्या-द्वेष-घृणा से रहित बुद्धिऽऽऽ
दान-दया-सेवा व परोपकार सेऽऽ आनंद बढ़ता है पावन भाव सेऽऽऽ
आनंद ही...(3)

परनिंदा-अपमान व परपीड़ा सेऽऽ दुश्चिन्ता तनाव व उदासीनता सेऽऽऽ
फैशन-व्यसन-दंभ प्रपंच सेऽऽ दूर होने से सुख सुहृदयता (शांति) सेऽऽऽ
आनंद ही...(4)

आनंद से पाप भाव काम नहीं होतेऽऽ विवाद-विसंवाद व कलह नहीं होतेऽऽऽ
क्रूरता-शत्रुता-हत्या भी नहीं होतीऽऽ चिन्ता-उदासीनता आदि नहीं होतीऽऽऽ
आनंद ही...(5)

पाप निरोध होता तथा पुण्य बढ़ताऽऽ डोपामाइन रूपी हैप्पी हारमोन स्राव होताऽऽऽ
उत्साह-साहस-बल में भी होती संवृद्धिऽऽ उत्तम विचार काम में भी होती संवृद्धिऽऽऽ
आनंद ही...(6)

ज्ञान व ध्यान में भी होता विकासऽऽ (पाँचों ही) इन्द्रियों की क्षमता में होता विकासऽऽऽ
रोग-प्रतिरोधक क्षमता में होता विकासऽऽ नये रोग न होते पुराने विनाशऽऽऽ
आनंद ही...(7)

(बाह्य) अभाव व दुःखों का न होता अनुभवऽऽ संतोष शांति (आह्लाद) का होता है
अनुभवऽऽऽ
अन्य भी होते आनंदित भाव संक्रमणऽऽ ओरा या आभा मण्डल का है परिणामऽऽऽ
आनंद ही...(8)

परम आनंद से होता कर्मों का संक्षयऽऽ जिससे जीव को मिलता परम मोक्षऽऽऽ
सच्चिदानंदमय जीव का शुद्ध स्वरूपऽऽ यही 'कनक' का शुद्ध अध्यात्म रूपऽऽऽ
आनंद ही...(9)

हिंसानंद मृषानंद चौर्यानंद सेऽऽ पाप, दुःख होता परिग्रहानंद सेऽऽऽ
फैशन-व्यसन-आडम्बर-दंभ सेऽऽ जो होता आनंद वह सुखाभास (है)ऽऽऽ
आनंद ही...(10)

धर्म में /(से) भी यदि होता संक्लेशऽऽ ईर्ष्या-तृष्णा-घृणा व राग-द्वेष/(वाद-विवाद)ऽऽऽ
होता है दुःख (अतः) होता पापास्रवऽऽ धर्म का स्वरूप क्योंकि सुखरूपऽऽऽ
आनंद ही...(11)

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 25.12.2015, रात्रि 8.00
(यह कविता ''मन की शक्ति'' मैक्सवेल माल्ट्ज से भी प्रेरित है।)

## सन्दर्भ-

**आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।**
**जायते परमानन्दः, कश्चिद्योगेन योगिनं।। (47)**

He who is firmly established in his own self and keeps away from the worldly intercourse a supreme kind of happiness is produced in the being of such a yogi!

देहादि से निवृत्त होकर जो स्व-आत्मा में ही लीन होकर प्रवृत्ति निवृत्ति रूप व्यवहार से दूर होकर ध्यान करता है ऐसे योगी को स्व-आत्मा ध्यान से एक अनिर्वचनीय परम आनंद उत्पन्न होता है जो आनंद अन्य में असंभव है।

**समीक्षा**-प्रत्येक आत्मा अनंत अक्षय-ज्ञान-घन या परमानंद स्वरूप है परन्तु जिस प्रकार घने बादल के कारण सूर्य रश्मि प्रकट नहीं होती है उसी प्रकार घने कर्म के कारण राग-द्वेष-संकल्प-विकल्प के कारण वह स्वभाव लुप्त प्रायः है। तथापि जिस प्रकार बादल हटने पर, घटने पर सूर्य रश्मि प्रगट हो जाती है उसी प्रकार साधना के बल पर कर्मादि क्षीण होने पर, विलीन होने पर स्व में निहित आनंद प्रकट हो जाता है। यह आनंद जीव का स्वाभाविक गुण या आनंद है। इस आनंद को प्राप्त योगी के लिए संसार के समस्त सुख, वैभव तुच्छ प्रायः प्रतिभासित होता है, दुःख रूप में दिखाई देता है। इसे ही सच्चिदानंद, आत्मानंद, परमानंद, अनंत सुख, अलौकिक आनंद, इन्द्रियातित आनंद, ब्रह्मानंद आदि नाम से अभिहित किया जाता है। इस आनंद को ही प्राप्त करने के लिए समस्त धार्मिक विधियाँ की जाती है। बड़े-बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती आदि भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव त्याग कर सर्व संन्यास लेकर ध्यान करते है। हर संप्रदाय के महापुरुष साधु-संत इस आनंद को प्राप्त करने के लिए साधना तथा ध्यानरत रहते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार महर्षि कपिल, पताञ्जली यहाँ तक कि हिन्दू धर्म के सर्वश्रेष्ठ देव ब्रह्मा, विष्णु और

महेश भी इस आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त, कार्यकलाप गतिविधियों को छोड़कर ध्यान लीन रहते हैं। जैन धर्म के अनुसार शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ जो स्वयं गृहस्थावस्था में चक्रवर्ती, कामदेव थे तथा जिनके दो कल्याणक हो गए थे और तीन ज्ञान के भी धारी थे वे भी इस परम् आनंद को प्राप्त करने के लिए समस्त वैभव त्यागकर, साधु बनकर आत्म ध्यान में लीन हो गए।

गीता में महामानव नारायण श्री कृष्ण ने अर्जुन के लिए ध्यान का वर्णन करते हुए निम्न प्रकार विवेचन किया है-

**यत्रो परमते चित्तं निरूद्धं योग सेवया।**
**यत्र चैवात्मनात्मानं पश्चन्मात्मानि तुष्यति।।**
**सुखमात्यंतिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यामतीन्द्रियम्।**
**वेत्ति यत्र न चेवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः।।**
**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।**
**यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचारल्यते।।**
**तं विद्याददुःखसंयोग वियोगं योग संज्ञितम्।**
**स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।**

योग के सेवन से अंकुश में आया हुआ मन जहाँ शांति पाता है, आत्मा से ही आत्मा को पहचानकर आत्मा में जहाँ मन संतोष पाता है और इन्द्रियों से परे और बुद्धि से ग्रहण करने योग्य अनंत सुख का जहाँ अनुभव होता है, जहाँ रहकर मनुष्य मूल वस्तु से चलायमान नहीं होता और जिसे पाने पर दूसरे किसी लाभ को वह उससे अधिक नहीं मानता और जिसमें स्थिर हुआ महादुःख से भी डगमगाता नहीं, उस दुःख के प्रसंग से रहित स्थिति का नाम योग की स्थिति समझना चाहिए। यह योग ऊबे बिना दृढ़तापूर्वक साधने योग्य है।

**प्रशान्तमनस ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।**
**उपैति शांत रजसं ब्रह्मयूतकल्मषम्।**

जिसका मन भली-भाँति शांत हुआ है जिसके विकार शांत हो गये हैं, ऐसा ब्रह्ममय हुआ निष्पाप योगी अवश्य उत्तम सुख प्राप्त करता है।

**युञ्जन्नेव सदात्मानं योगी विगत कल्मषः।**
**सुखेन ब्रह्मसंस्प्रर्शमनन्तं सुखमश्नुते।।**

आत्मा के साथ निरंतर अनुसंधान करते हुए पाप रहित हुआ यह योगी सरलता से ब्रह्म प्राप्ति रूप अनंत सुख का अनुभव करता है।

## आत्मानंद से कर्म-नष्ट

**आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।**
**न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्यचेतनः।। (48)**

Self produced happiness is constant by burning up the karmic fuel in large quantities, while the yogi, indifferent to the external pain, is no affected by it in the least!

वह आत्मानंद प्रवाह रूप से आने वाली प्रचुर कर्म संतति को निर्दहन कर देता है जिस प्रकार अग्नि ईंधन को भस्म कर देती है। ऐसा आनंद से सम्पन्न योगी परिषह, उपसर्ग क्लेशादि बाह्य दुःख को अनुभव नहीं करता है। इसलिए वह उससे संक्लेश को प्राप्त नहीं होता है, खेद को प्राप्त नहीं होता है।

**समीक्षा**-जब आत्मा स्व-आत्मा में ही स्थिर हो जाता है, रम जाता है, लीन हो जाता है तब स्वयं में अनंत अक्षय आनंद का अनुभव करता है। अरिहंत, सिद्ध भगवान् पूर्णतः स्व-आत्मा में स्थिर होने के कारण वे संपूर्ण दुःखों से रहित अक्षय अनंत आत्मोत्थ सुख का अनुभव करते हैं। सिद्ध भगवान् समस्त द्रव्य कर्म, भाव कर्म, नो कर्म अथवा घातिया कर्म, अघातिया कर्म नष्ट करके स्वयं में पूर्ण निस्पन्द रूप से लीन होने के कारण अनंत सुख का अनुभव करते हैं तथा अरिहंत भगवान् घातिया कर्म को नष्ट करने के कारण अनंत सुख को अनुभव करते हैं। घातिया कर्म के अभाव से मोह, राग, द्वेष, तृष्णादि क्षय हो जाते हैं तथा अनंत सुख, वीर्य, ज्ञान दर्शन प्राप्त कर लेते हैं जिसके कारण वे शरीर संबंधी या पुण्य-पाप संबंधी या समवसरण संबंधी किसी भी प्रकार के सुख-दुःख वेदन नहीं करते है। जय धवला में वीरसेन स्वामी ने केवली के शारीरिक सुख-दुःख, भूख, प्यास आदि नहीं होने का अत्यंत सूक्ष्म दार्शनिक विवेचन निम्न प्रकार से किया है-

50. चार अघातिया कर्म विद्यमान हैं, इसलिए वर्तमान जिनके देवत्व का अभाव नहीं हो सकता है, क्योंकि चार अघातिया कर्म देवत्व के घात करने में असमर्थ हैं, इसलिए उनके रहने पर भी देवत्व का विनाश नहीं हो सकता है।

**शंका**-चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं है, यह कैसे जाना जाता है?

**समाधान**–चार अघातिया कर्म यदि देवत्व के विरोधी होते तो उनकी अघाति संज्ञा नहीं बन सकती थी, इससे प्रतीत होता है कि चार अघातिया कर्म देवत्व के विरोधी नहीं हैं।

51. नामकर्म और गोत्रकर्म तो अवगुण के कारण है नहीं, क्योंकि जिन क्षीण मोह हैं। इसलिए उनमें नाम और गोत्र के निमित्त से राग और द्वेष संभव नहीं हो सकते हैं। आयुकर्म भी अवगुण का कारण नहीं है। क्योंकि क्षीणमोह जिन भगवान् में वर्तमान क्षेत्र के निमित्त से राग-द्वेष नहीं उत्पन्न होता है और आगे होने वाले लोक शिखर पर गमन के प्रति सिद्ध के समान उनके उत्कंठा नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि केवली जिनके विद्यमान आयुकर्म अवगुणों का कारण नहीं है तथा वेदनीय कर्म भी अवगुणों का कारण नहीं है, क्योंकि यद्यपि केवली जिनके वेदनीय कर्म का उदय पाया जाता है, फिर भी वह असहाय होने से अवगुण उत्पन्न नहीं कर सकता है। चार घातिया कर्मों की सहायता से ही वेदनीय कर्म दुःख को उत्पन्न कर सकता है, परन्तु केवली जिनके चार घातिया कर्म नहीं है, इसीलिए जल और मिट्टी के बिना बीज जिस प्रकार अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होता है उसी प्रकार वेदनीय भी घाति चतुष्क के बिना अपना कार्य नहीं कर सकता है।

**शंका**–दुःख को उत्पन्न करने वाले वेदनीय कर्म के दुःख के उत्पन्न कराने में घाति चतुष्क सहायक है, यह कैसे जाना जाता है?

**समाधान**–यदि चार घातियाँ कर्मों की सहायता के बिना भी वेदनीय कर्म दुःख देने में समर्थ हो तो केवली जिनके रत्नत्रय की निर्बाध प्रवृत्ति नहीं बन सकती है। इससे प्रतीत होता है कि घाति चतुष्क की सहायता से ही वेदनीय अपना कार्य करने में समर्थ होता है।

घातिकर्म के नष्ट हो जाने पर भी वेदनीय कर्म दुःख उत्पन्न करता है यदि ऐसा माना जाय तो केवली जिनको भूख और प्यास की बाधा होनी चाहिए परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि भूख और प्यास में भोजन विषयक और जल विषयक तृष्णा के होने पर केवली भगवान् को मोहपने की आपत्ति प्राप्त होती है।

इससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि आत्मा का स्वशुद्ध स्वरूप अनंत आनंद स्वरूप है। अतएव जो जीव जितने-जितने अंश में उस स्वरूप को प्राप्त करता जाता है वह उतने-उतने अंश में बाह्य दुःखों से निवृत्त होता जाता है और आत्मानंद को

अनुभव करता जाता है। इसलिए ध्यान में स्थित 8वें गुणस्थान से लेकर आगे के मुनियों को बाह्य दुःख का वेदन नहीं होता है। सामान्य व्यक्तियों को भी अनुभव में आता है कि यदि उनका मन किसी काम में लीन है तो अन्य विषय उन्हें अनुभव में नहीं आता है। अचेतन अवस्था में भी शरीर के दुःख अनुभव में नहीं आता है। एन्थेसीया (अचेतन करने की औषधि) का प्रयोग करके शल्य-चिकित्सा की जाती है, उस समय हाथ, पैर, यहाँ तक की हृदय को काटने पर भी उसकी पीड़ा अनुभव नहीं होती है।

## मुमुक्षु का कर्त्तव्य

**अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।**
**तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49)**

That excellent and supreme light of the self is the destrayer of ignorance, the seekers after saluation should always angage themselves in questioning others about it, in ectionately deeking it and in realizing if by actual exprionce!

पूर्वोक्त विषय को आचार्यश्री और भी बताते है-मुमुक्षु को सतत उस आनंद स्वरूप, ज्ञानमय, आत्म प्रकाशक अविद्या रूपी अंधकार को भेदन करने वाली परम् चितज्योति, विघ्नों को छेदन करने वाला महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य प्रकाश के बारे में गुरु आदि से सतत पूछना चाहिए तथा उसकी इच्छा करनी चाहिए एवं उसका ही अनुभव करना चाहिए। आचार्य गुरुदेव शिष्य के प्रति परम करुणा से प्लावित होकर शिष्य को आत्म तत्त्व के बारे में विशेष ज्ञान कराने के लिए व उसमें स्थिर करने के लिए आत्म तत्त्व का सविस्तार यहाँ वर्णन किया है।

**समीक्षा**-संसारी जीव अनादि अनंत काल से स्व-आत्म स्वरूप को भूलकर उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिर-विस्मरणीय उपेक्षित स्व-आत्म द्रव्य और आत्म स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरूह है, क्लिष्ट साध्य है। कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।**
**एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।।4।।** समयसार पृष्ठ-4

सुदा अनंत बार सुनी गई है परिचिदा अनंत बार परिचय में आई है अणु भूदा अनंत बार अनुभव में भी आई है। सव्वस्स वि सब ही संसारी जीवों के काम भोग बंध कहा काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिए गए हैं उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नर-नारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत-परिचित और अनुभूत है इसलिए दुर्लभ नहीं किन्तु सुलभ है। एयत्तस्स परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व का अवलंभों उपलंभ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना णवरि वह केवल ण सुलभो सुलभ नहीं है विहतस्स कैसे एकत्व का? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्यश्री ने कहा कि-हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत मोक्ष स्वरूप स्व-आत्म तत्त्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान करो। ग्रंथकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुए कहा है-

**तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।**
**येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।**

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्म ज्योति का स्वरूप कहे, उसी के संबंध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे। जब तक अविद्या (अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकरान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है-

**एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।**
**प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव।।9।।**

फिर शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृतपान किस प्रकार करूँ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति-विजाति का भेद नहीं और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्व-प्रकाश

रूप हूँ, निश्चय रूपी अग्नि से अज्ञान रूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होने पर शोक रहित होकर परमानंद को प्राप्त हो।

**यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं रज्जुसर्पवत्।**

**आनन्दपरमानन्दः स बोधस्त्वं सुखंचर।।10।।**

यहाँ शिष्य शंका करता है कि, आत्मज्ञान से अज्ञानरूपी वन के भस्म होने पर भी सत्यरूप संसारी की निवृत्ति न होने के कारण शोक रहित किस प्रकार होऊँगा? तब गुरु समाधान करते हैं कि, हे शिष्य! जिस प्रकार रज्जु के विषे सर्प की प्रतीति होती है और उसका भ्रम प्रकाश होने से निवृत्ति हो जाती है, उसी प्रकार ब्रह्मा के विषे जगत् की प्रतीति अज्ञान कल्पित है, ज्ञान होने से नष्ट हो जाती है। तू ज्ञानरूप चैतन्य आत्मा है, इस कारण सुखपूर्वक विचर। जिस स्वप्न में किसी पुरुष को सिंह मारता है तो वह बड़ा दुःखी होता है परन्तु निद्रा के दूर होने पर उस कल्पित दुःख का जिस प्रकार नाश हो जाता है उसी प्रकार तू ज्ञान से अज्ञान का नाश करके सुखी हो। फिर शिष्य प्रश्न करता है कि हे गुरो! दुःख रूप जगत् अज्ञान से प्रतीत होता है और ज्ञान से उसका नाश हो जाता है परन्तु सुख किस प्रकार प्राप्त होता है? तब गुरु समाधान करते है कि हे शिष्य! दुःखरूपी संसार के नाश होने पर आत्मा स्वभाव से ही आनंद स्वरूप हो जाता है, मनुष्य लोक से तथा देवलोक से आत्मा का आनंद परम उत्कृष्ट और अत्यंत अधिक है।

# भाव विशुद्धि हेतु ही करणीय धर्म

## (अशुभ-शुभ-शुद्ध भाव से होता है पाप-पुण्य व मोक्ष)

**(चाल : आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)**

आत्म विशुद्धि के लिए ही पालनीय है सदा धर्म।
दान पूजा तीर्थयात्रा तप-त्याग ध्यान व अध्ययन।। (ध्रुव)

आत्म विशुद्धि रहित जो करते है बाह्य धर्म।
ख्याति पूजा व लाभ हेतु राग द्वेष सहित हो धर्म।।

सातिशय पुण्य का न होता बंध नहीं होता है पाप नाश।
पापानुबंधी होता पुण्यबंध संसार न होता नाश।। (1)

मिथ्यात्व सहित जो दिखावा हेतु करते है धर्म।

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि हेतु निदान सहित पालते धर्म।।

उन्हें न यथार्थ से होता पुण्य, पुण्य बंधता है अतिकम।
पाप की निर्जरा भी नहीं होती, नहीं मिलता है मोक्षधाम।। (2)

जप करता हुआ सेठ, पानी-पानी का किया ध्यान।
मरकर स्व-बावड़ी में ही, मेंढ़क योनि में लिया जन्म।।

जाति स्मरण के बाद महावीर के दर्शन हेतु चल पड़ा।
कमल-दल मुख में लेकर, शुभ-भाव में चल पड़ा।। (3)

मार्ग में ही श्रेणिक के, हाथी के पैर से कुचल मरा।
अंतर्मुहूर्त में देव बनकर, समवशरण में पहुँच गया।।

आकाशगामिनी विद्या सिद्धि हेतु, सेठ ने णमोकार मंत्र जपा।
शंका के कारण से विद्या को, वह सिद्ध न कर पाया।। (4)

शंका रहित हो चोर ने, आणं-ताणं का जप किया।
शुभ भाव व एकाग्रता से, विद्या को शीघ्र सिद्ध किया।।

पुण्य पाप (व) बंध-मोक्ष सभी, होते हैं परिणामों से।
शुभ भावों से पुण्य बंध, पाप (होता) अशुभ परिणामों से।। (5)

शुद्ध भाव से होता है मोक्ष, भाव ही मुख्य सभी में।
शुभ व शुद्ध भाव, करणीय (है) दान पूजादि में।।

शुभ व शुद्ध भाव हेतु, धार्मिक क्रियाएँ हैं निमित्त (करण, साधन)।
बाह्य निमित्त के माध्यम से, पावन करणीय चित्त/(परिणाम)।। (6)

साधन बिना न कभी, होती है साध्य की सिद्धि।
साधन ही जब बाधक बनते, तो दूर हो जाती सिद्धि।।

लक्ष्य हो मोक्ष साधन तो, समुचित पावन हो चित्त।
साध्य मिलेगा अवश्य, 'कनक' वर्णन किया आगमोक्त।। (7)

स्व-स्व भूमिका में व्यवहार, धर्म भी सदा पालनीय।
भाव विशुद्धि हेतु व्यवहार धर्म सदा भी पालनीय।।

राग द्वेष मोह के क्षीण से होता है भाव विशुद्ध।

ईर्ष्या तृष्णा घृणा निन्दादि, त्याग से होता भाव विशुद्ध।। (8)

**द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,**
**भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तु कामः।**
**आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,**
**भूतार्थ-यज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञम्।।** (संस्कृत पूजा)

अपने भावों की परम शुद्धता को पाने का अभिलाषी मैं आगमानुकूल जल, चन्दनादि द्रव्यों की शुद्धता को पाकर जिनस्तवन, जिनबिम्ब दर्शन आदि अनेक आवलंबनों का आश्रय लेकर भूतार्थ रूप पूज्य अरहंतादि का पूजन करता हूँ।

**अर्हत् पुराणपुरुषोत्तम पावनानि,**
**वस्तून्यूननमखिलान्ययमेक एव।**
**अस्मिन् ज्वलद्विमल केवल बोध वह्नौ,**
**पुण्य समग्र महमेकमना जुहोमि।।** (संस्कृत पूजा)

हे अर्हन्! हे पुराण पुरुषोत्तम! यह असहाय मैं इन पवित्र समस्त जलादि द्रव्यों का आलंबन लेकर अपने समस्त पुण्य को इस दैदीप्यमान निर्मल केवलज्ञान रूपी अग्नि में एकाग्रचित्त होकर हवन करता हूँ।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 27.12.2015, रात्रि 8.37

(यह कविता स्वाध्याय के समय में श्रीमती मधुबाला (अध्यापिका) के द्वारा की गई जिज्ञासा के समाधान में बनी।)

जिस प्रकार लोक में गुड़ या शक्कर के रस से चूर्ण अधिक मधुरता को प्राप्त होता है उसी प्रकार पूज्य पुरुषों से निरंतर अधिष्ठित तीर्थ, जगत् को पवित्र करने वाले होते हैं। भगवती आराधना में कहा भी है-

**गिरि णदियादि तित्थापि तपोधणेहिं जदि उसिदा।**

गिरि (पर्वत) नदी आदि तीर्थ तब बन जाते हैं जब तपोधन के द्वारा सेवन किये जाते हैं अर्थात् जब तपोधन किसी पर्वत आदि में साधना करते हैं तब वे पर्वतादि तीर्थ बन जाते हैं। उस क्षेत्र की वंदना से पूजा से तथा दर्शन से उन महापुरुषों का गुण स्मरण होता है जिससे दर्शन विशुद्धि होती है नये-नये संवेग और वैराग्य उत्पन्न होते हैं। भगवती आराधना में कहा भी है-

**जम्मणअभिणिक्खवणे णाणुप्पमिती य तित्थचिण्हणिसिहोआ।**
**पासंतस्स जिंणाणं सुविसुद्ध दंसणं होदि।** (भगवती आराधना)

जिनदेवों के जन्म स्थान, दीक्षा स्थान, केवलज्ञान की उत्पत्ति का स्थान और समवशरण के चिह्न मान स्तंभ का स्थान निषीधिका स्थान देखने वाले के सम्यक् रूप से निर्मल सम्यग्दर्शन होता है।

यदि तीर्थ क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, धार्मिक क्षेत्र, मंदिर आदि में जाकर उपयुक्त भावना को नहीं भाते है तो वह क्षेत्र पूजा यथार्थ पूजा नहीं है। वर्तमान में तो अनेक व्यक्ति क्षेत्र आदि में केवल मनोरंजन के लिए जाते हैं। वहाँ जाकर इधर-उधर घूमेंगे, सिनेमा देखेंगे, होटल में खायेंगे, कलह करेंगे दादागिरी नेतागिरी करेंगे। अभी तो और एक नई व गंदी परंपरा प्रारंभ हो गई है तीर्थ क्षेत्रों में सामूहिक शादियाँ करते हैं। उन शादियों में अश्लील गाने व नृत्य करते हैं, अभक्ष भक्षण करते हैं, रात्रि भोजन करते हैं। कुछ स्थानों में शराब आदि पीते हैं। ये सब कार्य धन के लोभ से एवं नाम बड़ाई के कारण करते हैं। ऐसी गंदी परंपरा का पूर्ण रूप से निषेध होना चाहिए।

जिस काल में तीर्थंकर जैसे आध्यात्मिक पुरुष जन्मादि ग्रहण करते हैं, उस काल में जो पूजा की जाती है उसे काल पूजा कहते हैं। काल पूजा में भी गुणानुराग पूर्वक आध्यात्मिक गुणों की पूजा की जाती है न कि दिन-रात, घंटा, महीनों, वर्षों आदि की पूजा की जाती है। काल पूजा को सामान्यतः पर्व कहते हैं। प्रत्येक धार्मिक पर्व के पीछे एक प्रेरणाप्रद इतिहास रहता है, उद्देश्य रहता है। उस पवित्र उद्देश्य को प्राप्त करना काल पूजा या पर्व का लक्ष्य है न कि केवल अष्ट द्रव्य चढ़ा देना इसका उद्देश्य है। परन्तु वर्तमान में पर्व की जो पवित्रता है वह नष्ट होती जा रही है। पर्व के दिन में सामान्यतः लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहन लेते है, मिठाइयाँ खा लेते है, भीड़ लगाकर मनोरंजन कर लेते हैं। कभी-कभी तो पर्व के दिन में भीड़ का लाभ उठाकर झगड़ा, कलह, मारपीट, लूटपाट, बलात्कार, गंदी राजनीति, दादागिरि करते है। यह सब पर्व के नाम पर कलंक है, अभद्रता है, अनागरिकता है।

भाव पूजा ही यथार्थ पूजा है। उपर्युक्त नामादि पूजा में भी भाव पूजा ही अभिप्रेत है। भावों की निर्मलता से युक्त होकर पंचपरमेष्ठी की भक्ति आराधना, सेवा, वैयावृत्ति करना भाव पूजा है। इस पूजा का उद्देश्य पूर्वोक्त पूजा के समान पंचपरमेष्ठी के गुणों को प्राप्त करना होता है। भाव पूजा से रहित संपूर्ण पूजाएँ प्राण रहित शरीर के

समान विद्युत् से रहित बल्ब के समान, रत्नत्रय से रहित मोक्षमार्ग के समान खोखला है, शून्य है, व्यर्थ है क्योंकि धर्म में भाव की प्रधानता होती है। पूर्वाचार्य ने कहा भी है-

**आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि**
**नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्तया।**
**जातोऽस्मि तेन जन बान्धव! दुःख पात्रं,**
**यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः। (38)** (कल्याण मंदिर स्त्रोत पृ. 33)

मैंने आपका नाम भी सुना, पूजा भी की और दर्शन भी किये फिर भी दुःख मेरा पिण्ड नहीं छोड़ते उसका कारण सिर्फ यही मालूम होता है कि मैंने भक्तिपूर्वक आपका ध्यान नहीं किया। केवल आडम्बर रूप से ही उन कामों को किया है न कि भावपूर्वक भी। यदि भाव से करता तो कभी दुःख नहीं उठाने पड़ते। अंतरंग परिणाम ही पुण्य बंध, पाप बंध, संवर, निर्जरा एवं मोक्ष के लिए कारण होता है। इसलिये पाप की निर्जरा के लिए पुण्य के उपार्जन के लिए परम्परा से मोक्ष प्राप्ति के लिए शुभ प्रशस्त भाव चाहिए। आत्मानुशासन में कहा भी है-

**परिणाममेव कारणमाहुः खलु पुण्यपापयोः प्राज्ञाः।**
**वस्मात् पापापचयः पुण्योपचयश्च सुविधेयः।। (23)**

विद्वान् मनुष्य निश्चय से आत्म परिणाम को ही पुण्य और पाप का कारण बतलाते हैं। इसलिये अपने निर्मल परिणाम के द्वारा पूर्व संचित पाप की निर्जरा, नवीन पाप का निरोध और पुण्य का उपार्जन करना चाहिए।

**विशेषार्थ**-'शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य' (तत्त्वा 6-3) इस सूत्र में आचार्य प्रवर श्री उमास्वामी ने यह बतलाया है कि शुभ योग पुण्य तथा अशुभ योग पाप के आस्रव का कारण है। यहाँ शुभ परिणाम से उत्पन्न मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को शुभ योग तथा अशुभ परिणाम से उत्पन्न मन, वचन एवं काय की प्रवृत्ति को अशुभ योग समझना चाहिए। इस प्रकार जब पुण्य का कारण अपना ही शुभ परिणाम तथा पाप का कारण भी अपना ही अशुभ परिणाम ठहरता है तब आत्महित अभिलाषा करने वाले भव्य जीवों को अपने परिणाम सदा निर्मल रखने चाहिए जिससे कि उनके पुण्य का संचय और पूर्व संचित पाप का विनाश होता रहे।

# पर दुःख से दुःखी महान् जन तो
# पर दुःख से संतोषी होते दुर्जन

**(चाल : छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)**

पर दुःख कातर होते महान् जन...पर दुःख संतोषी होते दुष्ट दुर्जन...
तीर्थंकर बुद्ध आदि होते महान्...रावण कंस आदि सम होते दुर्जन...

पशुओं की पीड़ा से पीड़ित होकर...नेमिनाथ बन गये मुनीश्वर...
घायल हंस से भी दुःखी होकर...सिद्धार्थ गौतम हुए करुणावर...(1)...

उदार पुरुष हेतु होता विश्व कुटुम्ब...सभी के सुख हेतु वे करते भाव...
इससे विपरीत होते दुष्ट दुर्जन...अन्य को दुःख देने का करते भाव...

जो भावना भाता है तीव्र भाव से...सभी जीव सुखी हो वात्सल्य भाव से...
षोडष कारण भावना को भाता भाव से...तीर्थंकर बने यह वर्णन शास्त्रों में...(2)...

युगल नाग को मंत्र सुनाया पार्श्व ने...कुत्ता को मंत्र सुनाया जीवन्धर ने...
दिव्य ध्वनि में विश्व हित होता कथन...विश्व शांति व मोक्ष का होता वर्णन...

सभी के हित हेतु जो भावना भाता...हर जीव को स्व सम आत्मा मानता...
वह अन्य को न कष्ट देगा भाव से...मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ चित्त से...(3)...

पीत पद्म शुक्ल लेश्याधारी जो होते...सुदृष्टि-कुदृष्टि जीव भी जो होते...
वे सभी पर दुःख में होते कातर...कृष्ण नील कापोत वाले होते हैं क्रूर...

ईसा मसीह नाइटेंगल मदर टेरेसा...नेताजी सुभाष गाँधी विनोबा मण्डेला...
पर दुःख दूर हेतु भावना भी भाये...रावण कंस हिटलर पर को सताये...(4)...

अपाय विचय विपाक विचय धर्मध्यान...परोपकार दया दान सेवा करुणा दान...
पर दुःख दूर हेतु होते ये काम...'कनकनन्दी' की भावना है विश्व कल्याण...(5)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 26.12.2015, रात्रि 7.50

**सन्दर्भ-**

**स्वार्थैकमतयो भान्तु मा भान्तु घटदीपवत्।**
**परार्थे स्वार्थमतयो ब्रह्मवद् भान्त्वहर्दिवम्।। (11)**

जिनकी मति परार्थ में न होकर केवल स्वार्थ में ही रहती है वे घट में रखे

दीपक की तरह लोक में चमके या न चमके, उसमें हमें कोई रूचि नहीं है किन्तु जो स्वार्थ की तरह परार्थ में भी तत्पर रहते हैं वे ब्रह्म की तरह दिन-रात प्रकाशमान रहें।

**स्वदुःखनिर्घृणारम्भाः परदुःखेषु दुःखिताः।**

**निर्व्यपेक्षं परार्थेषु बद्धकक्षा मुमुक्षवः।।** म.पु. 9/164

'मुमुक्षुजन अपने दुःख को दूर करने के लिए प्रयत्न करना भी उचित नहीं मानते तथा परदुःख से दुःखी होकर बिना किसी अपेक्षा के परोपकार के लिए सदा तत्पर रहते हैं।'

**आदहिदं कादव्वं जइ सक्कइ परहिदं च कादव्वं।**

**आदहिदपरहिदादो आदहिदं सुट्ठु कादव्वं।।**

'अपना हित करना चाहिए, यदि शक्य हो तो परहित करना चाहिए किन्तु आत्महित और परहित में से आत्महित ही सम्यक् रूप से करना चाहिए।'

**रोइय नायपुत्तवयणे अत्तसमे मन्नेज्ज छप्पि काए।**

**पंच य फासे महव्वयाइं पंचासवसंवरे जे स भिक्खू।। (5)**

जो ज्ञातपुत्र के वचन में श्रद्धा रखकर छहों कायों (सभी जीवों) को आत्मसम मानता है, जो पाँच महाव्रतों का पालन करता है, जो पाँच आस्रवों का संवरण करता है वह-भिक्षु है।

महान् जन सबके साथ प्रेम, मैत्री, उदारता, समता का व्यवहार करते हैं। इसको ही विश्व बंधुत्व, सर्वभूतात्मभूत कहते हैं। यह है धर्म का सार, अहिंसा का आधार, विश्व शांति का अमोघ उपाय।

जैन आचार्य ने कहा भी है-

**जीव जिणवर जे मुणहि जिणवर जीव मुणहि।**

**ते समभाव परट्ठिया लहुणिव्वाणं लहइ।।**

जो जीव को जिनवर एवं जिनवर को जीव मानता है, वह परम साम्य भाव में स्थित होकर अतिशीघ्र निर्वाण पद को प्राप्त करता है। यह है सर्वोत्कृष्ट, साम्यवाद, गणतंत्रवाद, समाजवाद, लोकतंत्रवाद।

**प्राणा यथात्मनोऽभीष्टाः भूतानामपि ते तथा।**

**आत्मोपम्येन मन्तव्यं बुद्धिमद्भिहात्माभिः।।** महाभारत अनुशासन पर्व 275/19

जैसे मानव को अपने प्राण प्यारे हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों को अपने-अपने

प्राण प्यारे हैं। इसलिए जो लोग बुद्धिमान और पुण्यशाली है, उन्हें चाहिए कि वे सभी प्राणियों को अपने समान समझें।

**यथा अहं तथा एते यथा एते तथा अहम्।**

**अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये।।** सुत्त निपात 3-3-27

जैसे मैं हूँ वैसे ये हैं तथा जैसे ये है वैसा मैं हूँ-इस प्रकार आत्म सदृश्य मानकर न किसी का घात करें, न करायें।

**सव्वे तसन्ति दण्डस्य, सव्वेसिं जीवितं पियं।**

**अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न घातये।।** (धम्मपद 10/1)

सब लोग दण्ड से डरते हैं, मृत्यु से भय खाते हैं। दूसरों को अपनी तरह जानकर न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा करें।

**यो न हन्ति न घातेति, न जिनाति न जापते।**

**मित्तं सो सव्वभूतेसु वेरं तस्स न केनचीति।।** (इतिबुत्तक, पृ.20)

जो न स्वयं किसी का घात करता है, न दूसरों से करवाता है, न स्वयं किसी को जीतता है, न दूसरों को जितवाता है, वह सर्व प्राणियों का मित्र होता है, उसका किसी के साथ बैर नहीं होता।

**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।** -मनुस्मृति

जो कार्य तुम्हें पसंद नहीं है, उसे दूसरों के लिए कभी मत करो।

**सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्।**

**क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।।**

**माध्यस्थभावं विपरीत वृतौ।**

**सदा ममात्मा विदधातु देव।। (1)** (भावना द्वात्रिंशातिका)

हे भगवान्! मेरा प्रत्येक जीव के प्रति मैत्री भाव रहे, गुणीजनों में प्रमोद भाव रहे, दुःखीजनों के लिए करुणा भाव रहे, दुर्जनों के प्रति मेरा माध्यस्थ भाव (साम्यभाव) रहे।

कुरान में विभिन्न स्थानों पर अहिंसा, विश्व-शांति की शिक्षा दी गयी है। 'सूरः मायदा' में हजरत अली के दो पुत्रों का वर्णन करते हुए, जिनमें एक ने दूसरे की नाहक हत्या की थी अल्लाह का कथन है-

'इसी कारणवश हमने बनी इसराईल को यह लिखकर दे दिया कि जो कोई

किसी मनुष्य की हत्या करे, बिना इसके कि उसने किसी की हत्या की हो या पृथ्वी पर उपद्रव किया हो तो मानो उसने सभी मनुष्यों की हत्या की और जिसने किसी के जीवन की रक्षा की हो तो मानो उसने सभी मनुष्यों के जीवन की रक्षा की।'

(सूरः मायदा आयत-32 क)

एक और स्थान पर अल्लाह कहता है कि-

'ऐ मोहम्मद सल्ल लोगों से कह दो कि आओ मैं तुमको बताऊँ कि अल्लाह ने तुम पर क्या हराम किया है, तुम्हारा कर्त्तव्य है कि अल्लाह के साथ किसी को भागीदार (शरीक) मत बनाओ, माता-पिता के साथ सद्व्यवहार करो। अपनी औलाद की दरिद्रता के भय से हत्या न करो, हम जहाँ तुमको जीविका देते हैं वहाँ उनको भी देंगे, बदकारी (दुष्कर्म) के पास भी मत जाओ, चाहे वह छुपी हुई हो या खुली हुई।'

(सूरः इनाम, आयत 151)

इस्लाम धर्म के पैगम्बर हजरत मोहम्मद भी मानवीय जीवन का इतना अधिक सम्मान करते थे कि उनमें अपने-पराये का अंतर भी न था। एक बार एक यहूदी की अर्थी उनके सामने से जा रही थी, तो वह उसके सम्मान में खड़े हो गये थे। उनके एक साथी ने कहा कि यह तो मुसलमान नहीं था। उन्होंने फरमाया कि क्या वह मनुष्य न था अर्थात् मानव का आदर आवश्यक है। वह मुसलमान हो या न हो।

'**आत्मवत्परत्र कुशल वृत्ति चिन्तनं शक्तितस्त्याग तपसी च धर्माधिगमोपायाः**' (नीतिवाक्यामृत)

अपने ही समान दूसरे प्राणियों का हित (कल्याण)-चिंतवन करना, शक्ति के अनुसार पात्रों को दान देना और तपश्चरण करना ये धर्म प्राप्ति के उपाय हैं।

**''सर्व सत्वेषु ही समता सर्वा चरणानां परमं चरणम्।'' (5)**

समस्त प्राणियों में समता भाव रखना अर्थात् उनकी रक्षा करना सभी सत्कर्त्तव्यों में सर्वोत्तम कर्त्तव्य है।

**''सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।**
**सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख माप्नुयात्।।''**

सम्पूर्ण जीव-जगत् सुखी-निरोगी, भद्र, विनयी, सदाचारी रहे। कोई भी कभी भी थोड़े से दुःख को प्राप्त न करें।

**शिवमस्तु सर्वज्ञगतः परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।**

**दोषा प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः।।**

सम्पूर्ण विश्व मंगलमय हो, जीव समूह परहित में निरत रहे, सम्पूर्ण दोष विनाश को प्राप्त हो जावे, लोक में सदा-सर्वदा जीव सम्पूर्ण प्रकार से सुखी रहें।

**मा कार्षीत् कोपि पापानि, मा च भूत कोपिदुःखितः।**
**मुच्यतां जगदप्येषां, मतिर्मैत्री निगद्यते।।**

कोई भी पाप कार्य को न करे, कोई भी दुःखी न रहे, सम्पूर्ण जगत् दुःख, कष्ट, वैरत्व से रहित हो जाये, इस प्रकार की भावना को मैत्री भावना कहते हैं।

**कायेन, मनसा वाचा सर्वेष्वपि च देहिषु।**
**अदुःख जननी वृत्ति मैत्री, मैत्रीविदां मता।।**

काय, मन, वचन से सम्पूर्ण जीवों के प्रति ऐसा व्यवहार करना जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे इसी प्रकार के व्यवहार को मैत्री भावना कहते हैं।

पूज्यपाद स्वामी ने भी विश्व कल्याण के लिए जो भावना के सूत्र दिये हैं, वे निम्न प्रकार हैं-

**क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्धार्मिको भूमिपालः।**
**काले-काले च सम्यग् वितरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।।**
**दुर्भिक्षं चौरमारिः क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके।**
**जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्य प्रदायि।। (15)** (शांति भक्ति)

सम्पूर्ण प्रजा क्षेम, कुशल हो, धार्मिक राजा (नेता) शक्ति सम्पन्न हो, समय-समय पर इन्द्र देव (बादल) सुवृष्टि करे, रोगनाश को प्राप्त हो, वे दुर्भिक्ष, चोरी, डकैती, आतंकवाद, दुःख-कलह, अशान्ति एक क्षण के लिए भी इस जीव-जगत् में न रहें। सब जीवों को सुख प्रदान करने वाले जिनेन्द्र भगवान् का धर्मचक्र (क्षमा, अहिंसा, दया, सत्य, मैत्री, संगठन आदि) सतत प्रवर्तमान रहे।

उपनिषद् में भी किसी भी जीव के प्रति घृणा न करके प्रेम करने के लिए कहा गया है-

**यस्तु सर्वाणि भूतानि, आत्मन्येवानुपश्यति।**
**सर्वभूतेषु चात्मानं, ततो न विजुगुप्सते।।**

जो अन्तः निरीक्षण के द्वारा सब भूतों (प्राणियों) को अपनी आत्मा में ही देखता है, और अपनी आत्मा को सब भूतों में, वह फिर किसी से घृणा नहीं करता है

# चातुर्मास कर्त्ता परिवार एक-उपलब्धियाँ अनेक

## (लघु ग्राम नन्दौड़ में स्थित केवल एक ही दि. जैन परिवार द्वारा संपादित चातुर्मास की अनेक विध महान् उपलब्धियाँ!)

**-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

**(चाल : आल्हा (बुन्देलखण्डी).....)**

कनकनन्दी वैश्विक गुरु...इनकी महिमा कही न जाय...
लघु ग्राम नन्दौड़ में श्रीसंघ...हीरक चातुर्मास बनाय...कनकनन्दी...

चतुर्विध श्रीसंघ को देखो...आकर के यहाँ पुण्य कमाय...
मुख्य पुण्यार्जन कर्त्ता इसके...नन्दा देवी व प्रवीण शाह...

इनकी पावन भक्ति-शक्ति...प्रेरणादायी मंगलदाय...
दो हजार पन्द्रह में हुआ...वर्षायोग प्रभावनकार...कनकनन्दी...(1)...

इस हेतु आचार्यश्रीजी...उन दोनों को नियम दिलाय...
पत्रिका पण्डाल बैण्ड बाजा...बोली आदि नहीं कराय...

सरल-सहज दिखावा रिक्त...स्वेच्छा प्रेरक काम कराय...
निराडम्बर व निस्पृह भाव...आदर्श चातुर्मास कराय...कनकनन्दी...(2)...

उक्त प्रतिज्ञा के पालन से...उपलब्धियाँ हुई अधिकाय...
आठ ग्रंथों के हुए विमोचन...सात ग्रंथों को दिया रचाय...

सत्य-साम्य-सुख अमृतमय...आध्यात्मिक हुआ स्वाध्याय...
इसके फल से भव्य जनों को...स्व (मैं) तत्त्व बोध होई जाय...कनकनन्दी...(3)...

अतिशय रूप ग्राम नन्दौड़ में...तीन श्रावक ब्रह्मचर्य धराय...
सप्तम प्रतिमा के व्रत पाकर...खुशपाल आशा धन्य हो जाय...

जैन-जैनेत्तर भव्य जनों ने...आहारदान दिया चौका लगाय...
वैयावृत्ति सेवा सहयोग...दान ज्ञान से मन हरषाय...कनकनन्दी...(4)...

सहज सरल अञ्चल/(नन्दौड़) के वासी...साधु-संतों को करे प्रणाम...
उत्तम आहार विहार व्यवस्था...प्राकृतिक छटा मन भाय...

तन-मन-अक्ष स्वास्थ्यप्रद...जन-गण-मन में होय सुभाव...

देश-विदेश के दर्शनार्थी...अनुमोदन कर अति हरषाय...कनकनन्दी...(5)...

पिच्छी परिवर्तन सम्मान...उपाधि प्रशस्ति प्रदान...

नन्दा देवी अभिनव श्रीमती...प्रवीण वज्रजंघ श्रेयांस...

मनीष नेहा जिनेन्द्र दृष्टि...नवोदित श्रीमती श्रेयांस...

बाल अक्षत चयन नवोदित...अभिनव श्रेयांस कुमार...कनकनन्दी...(6)...

निस्पृह भक्त किशोर खेतानी...सतत करे श्रीसंघ को दान/(ध्यान)...

व्यापक इनकी दान व भक्ति...कनकनन्दी श्रीसंघ को भाय...

मणिभद्र दीपेश मयंक...उपकरण व ज्ञान दातार...

ये सब जन पञ्चम काल में...अभिनव श्रेयांस हैं दातार...कनकनन्दी...(7)...

दिगम्बर श्वेताम्बर हिन्दू...सब जन आकर शीश नवाय...

आध्यात्मिक विज्ञान को पाने...देश-विदेश शिष्य सब आय...

सूक्ष्म-गहन विषयों की चर्चा...व्यापक वैश्विक सुखदाय...

'सुविज्ञ' श्रमण अनुमोदन कर...हरदम मन ही मन हरषाय...कनकनन्दी...(8)...

नन्दौड़, दिनांक 30.11.2015, रात्रि 10.25 व दिनांक 01.12.2015, रात्रि 9.40

# ग्राम-जंगल आदि में हमारे चातुर्मास के उद्देश्य व फल

**-आ. कनकनन्दी**

**(चाल : भातुकली....., तुम दिल की धड़कन....., सायोनारा.....)**

ग्राम जंगल व एकांत स्थानों में, चातुर्मास प्रवास के लाभ घनेरे।
स्वास्थ्य सम्पादन ध्यान-अध्ययन होते, ग्राम उत्थान अन्त्योदय भी होते।। (1)

प्रदूषण भीड़ से भी बचाव होता, समय शक्ति का दुरुपयोग भी न होता।
आहार विहार निहार निवास, होता है व्यवस्थित स्वच्छता सहित।। (2)

ग्राम को कुछ लोग पिछड़ा मानते, उपेक्षा भाव से व्यवहार भी करते।
कतिपय साधु भी ऐसा ही मानते, ग्रामों में नहीं जाते नहीं (भी) रहते।। (3)

सरल-सहज भावी ग्रामीण जनों को, उदार सहिष्णु व भोले-भालों को।
दान-दया-सेवा परोपकारीओं को, गँवार मानते हैं सज्जन ग्रामीणों को।। (4)

ग्रामों में ज्यादा धन-जन भी न होते, चमक-दमक-आडम्बर भी न होते।
प्रचार-प्रसार के साधन भी न होते, ख्याति पूजा लाभ भी कम भी मिलते।। (5)

अतएव ग्रामों को न अच्छा मानते, ग्रामों में रहना अतः न चाहते।
जिससे ग्रामीण लाभान्वित न होते, धर्मज्ञान सन्मान भी न पाते।। (6)

हमें तो ख्याति पूजा लाभ न चाहिए, ध्यान-अध्ययन व स्वास्थ्य चाहिए।
समता शांति निस्पृहता चाहिए, शोध-बोध व लेखन चाहिए।। (7)

ग्रामों में अतः हम ससंघ रहते, ग्रामीण भक्तों को लाभान्वित करते।
शुद्ध सात्विक आहारदान भी करते, सिगड़ी से बना उत्तम आहार भी देते।। (8)

हमारे व्रत नियम (भी) सही पालन होते, शौच भ्रमण हेतु सही स्थान मिलते।
देश-विदेशों के भक्त भी आते, 'अतिथि देवो भव' का आनंद पाते।। (9)

देश-विदेशों से सहयोग भी आते, विभिन्न धर्मावलंबी सहयोग (भी) देते।
साहित्य प्रकाशन भी उससे होता, देश-विदेशों में धर्म प्रचार होता।। (10)

जैन हिन्दू आदि भी लाभान्वित होते, सभी मिल साधुओं की सेवा करते।
शांति सौहार्द्र से सभी लाभ लेते, 'कनक' ससंघ अतः ग्राम में (भी) रहते।। (11)

(यह कविता मनीष (नन्दौड़) के कारण बनी। मनीष ने हमें बताया कि 'अन्य लोग हम ग्रामीणों को गँवार-पिछड़ा मानते है। हममें साधु संघ के चातुर्मास कराने की योग्यता नहीं ऐसा मानते हैं।')

नन्दौड़, दिनांक 04.12.2015, रात्रि 8.55 व 9.35

# चातुर्मास कर्त्ता एक उपलब्धियाँ अनेक

## (छोटा ग्राम नन्दौड़ में स्थित एक ही दि. जैन परिवार द्वारा संपादित चातुर्मास की अनेक विध महान् उपलब्धियाँ)

**-आर्यिका सुवत्सलमती**

**(चाल : सायोनारा....., तुम दिल की....., भातुकली.....)**
'नन्दौड़ ग्राम' छोटा पर उपलब्धियाँ हैं बड़ी-बड़ी।
कनकनन्दी श्रीसंघ की कृपादृष्टि इन पे पड़ी।। (ध्रुव)

नन्दादेवी प्रवीण कुमार (शाह) एक परिवार यहाँ रहता।
चातुर्मास हेतु चार वर्ष से, गुरुचरणों में अनुरोध करता।

भाग्योदय से दो हजार पन्द्रह (2015) का चातुर्मास यहाँ हुआ।
दो हजार सत्रह से पंच चातुर्मास, करो यह भाव भी प्रगट किया।। (1)

गुरुदेव ने प्रतिज्ञा दिलायी, पत्रिकादि आडम्बर नहीं करना।
बिना याचना व बोलियों के कोई, सहयोग करे तो स्वीकार करना।

मंगल प्रवेश, कलश स्थापना, गुरु पूर्णिमादि सानंद हुए।
आठ ग्रंथ विमोचन व सप्त गीतांजली आदि सृजन हुए।। (2)

मध्यान में प्रवचनसार का स्वाध्याय गुरुमुख से सुनते।
'मैं' का स्वरूप जानकर अनेक, भविजन कृतकृत्य हुए।

तीन श्रावकों ने ब्रह्मचर्य व खुशपाल आशा ने सात प्रतिमा।
नन्दौड़ के जैनेत्तर व अन्य ग्रामवासियों ने चौका लगाये।। (3)

विहार का मुहूर्त निकालने पर भी, रुकने का अनुरोध किया।
अनेक उपलब्धियों के कारण, नन्दौड़ 'अतिशय क्षेत्र' बना।

प्राकृतिक छटा यहाँ मनभावन, प्रदूषण रहित शुद्ध हवा।
आत्मसाधना हेतु अनुकूल, भ्रमण हेतु है मार्ग भला।। (4)

पिच्छी परिवर्तन समारोह में, अनेक उपाधि सम्मान प्रदान।
नन्दा देवी प्रवीण वज्रजंघ अभिनव श्रेयांस श्रीमती प्रदान।

मनीष-नेहा जिनेन्द्र-दृष्टि अक्षत चयन मणिभद्र मयंक दीपेश।
'नवोदित श्रेयांस' उपाधि से अलंकृत अन्य आहारदानी विशेष।। (5)

ग्रामवासी जन सहज सरल, व्यवहार उनका मृदुतम।
'कनक गुरु' का आशीष तुम्हें वात्सल्यता से आगे बढ़ो।

हीरक चातुर्मास नन्दौड़ ग्राम का अविस्मरणीय रहेगा।
ज्ञान ध्यान स्वाध्याय तपयुत जन-जन यशोगाथा गायेगा।। (6)

नन्दौड़, दिनांक 27.11.2015, रात्रि 7.50

# भक्ति-भावना-समता-शांति के साम्राज्य स्वरूप चातुर्मास सम्पन्न

## (पिच्छी परिवर्तन ग्रंथ विमोचन, सम्मान समारोह)

वैश्विक आध्यात्मिक वैज्ञानिक श्रमणाचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव ससंघ का वर्ष 2015 का आध्यात्मिक प्रभावनाकारक चातुर्मास वाग्वर अञ्चल के भद्रशालीन ग्राम नन्दौड़ में आनंदपूर्वक सम्पन्न हुआ। ग्राम में दि. जैन श्रावक के मात्र एक घर में इतने बड़े श्रीसंघ का निराडम्बर निस्पृह सुव्यवस्थित बिना बोली के सहज-सरल चातुर्मास होना एक अद्वितीय उपलब्धि है। नन्दौड़ ग्राम में पुनर्वास कॉलोनी, सागवाड़ा, आसपुर, पाड़वा, चीतरी के भक्त शिष्यों द्वारा आचार्यश्री सृजित 5 ग्रंथ व 1 फोल्डर का विमोचन किया गया। इन्हीं ग्रामों को गुरुदेव ने पिच्छी प्रदान करवाई एवं प्रशस्ति-पत्र साहित्य आदि प्रदान किया गया। नन्दौड़ के विमलनाथ जिन चैत्यालय में 66 दिन तक शांतिपूर्ण विधान सम्पन्न हुए। अञ्चलवासियों की आहारदान सेवा आदि प्रशंसनीय रही।

इस पुण्य अवसर में पधारे वैज्ञानिक एस.एल. गोदावत, भँवरलाल रॉटिया, दिनेश जांगा, विजयलक्ष्मी गोदावत आदि जनों ने आचार्यश्री के ज्ञान-विज्ञान-आध्यात्मिक अनुभव आदि वैश्विक उपलब्धियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। वर्ष 2017 के आगामी चातुर्मास हेतु प्रवीणचन्द्र व नन्दा देवी ने श्रीसंघ को निवेदन किया, जिसका समर्थन अनुमोदन ग्राम के पूर्व विद्वान् अध्यापक हेमेन्द्र जी भट्ट ने भी किया। सभा का संचालन संघस्थ ब्र. सोहनलाल जी ने किया।

आचार्यश्री ने अपने आध्यात्मिक क्रांतिकारी भावों से सभा को संबोधित करते हुए कहा कि आत्म शक्ति जागृत कर आप विश्व के मालिक बन सकते है। देश-विदेश के अनेक महापुरुषों के उदाहरण देते हुए कहा कि एकला चालो रे की उक्ति को इस नन्दौड़ ग्राम में प्रवीणचन्द्र नन्दा देवी परिवार ने साकार कर दिखाया। प्राचीन काल में राजा वज्रजंघ व श्रीमती ने आहारदान करके महान् आदर्श प्रस्तुत किया था, उसी भाँति इस चातुर्मास में इस एक परिवार ने भी धर्म स्वरूप पुण्यार्जन कर महान् आदर्श की स्थापना की है जिसका इतिहास आदर्श-हीरक-रत्नाक्षर में लिखने योग्य बन पड़ा

है। अंत में गुरुदेव ने कहा कि आगामी चातुर्मास के अनेक ग्राम व नगरों से जो निवेदन हो रहे है उन्हें मैं आवश्यकता व प्राथमिकता के आधार पर ही अवसर दूँगा। उपस्थित जनों को पूज्यश्री ने प्रतिज्ञा दिलवाई कि आप अपने जीवन में सदैव हर अच्छे व शुभ कार्य में सहयोगी अनुमोदक बनकर पुण्यार्जन कर सत्य शिव सुंदर स्वरूप विश्व के मालिक बने ऐसी मेरी शुभकामनाएँ व आशीर्वाद है।

**शुभाकांक्षी-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर**

# तब ये पापी मन पावन होगा!

**(चाल : झिलमिल सितारों का आँगन.....)**

**तब (ही) ये पापी मन पावन होगा...जब राग-द्वेष-मोह त्यागेगा...**
**सनम्र सत्यग्राही पावन होगा...उदार-सहिष्णु-सरल होगा...**
**तब (ही) ये...(स्थायी)...**

**ईर्ष्या तृष्णा घृणा को भी त्याग करेगा...अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागेगा...**
**वैर विरोध व द्वन्द्व त्यागेगा...समता-शान्ति प्राप्त करेगा...**

**परनिन्दा अपमान चिन्ता छोड़ेगा...आत्म विश्लेषण से स्व को शुद्ध करेगा...**
**महान् लक्ष्य उच्च भाव धरेगा...स्व-पर-विश्व कल्याण सोचेगा...(1)...**

**पर शोषण पर अहित त्यागेगा...दान दया व परोपकार करेगा...**
**फैशन-व्यसन-आडंबर त्यागेगा...ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि छोड़ेगा...**

**आत्मविश्वासी विवेकी सदाचारी होगा...स्व आत्म वैभव**
**/(प्राप्ति) का लक्ष्य धरेगा...**
**मैत्री प्रमोद कारुण्य माध्यस्थ (भाव) धरेगा...संकल्प-विकल्प-संक्लेश**
**त्यागेगा...(2)...**

**अन्यथा ये पापी मन पावन न होगा...भौतिक सत्ता-संपत्ति से भी न होगा...**
**पढ़ाई-प्रसिद्धि व धार्मिक ढोंग से...पावन न होगा मन अन्य काम से...**

**सर्वज्ञ देव द्वारा ज्ञात (ये) परम सत्य...अनुभवगम्य मेरा यथार्थ सत्य...**
**मनोवैज्ञानिक द्वारा प्रयोग सत्य...'कनक' को मान्य ये परम सत्य...(3)...**

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 04.03.2016, मध्याह्न 2.20

# मेरा लक्ष्य निर्बन्ध व सीमातीत

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

**बंधन रहित मैं होना चाहता हूँ सीमा से अतीत मैं होना चाहता हूँ।**
**मेरी इयत्ता है अक्षय अनन्त, शुद्ध-बुद्ध निर्बन्ध व ज्ञानानन्द।।**

**तन-मन-इन्द्रिय बन्ध व सीमा से परे होना चाहता हूँ राग द्वेष मोह से।**
**ईर्ष्या तृष्णा घृणा व द्रव्य-भाव कर्म से, परे होना चाहता हूँ तेरा मेरा भाव से।।**

**राष्ट्र भाषा जाति पंथ-मत सीमा से, परे होना चाहता हूँ मानव सीमा से।**
**कानून-संविधान-राजनीति सीमा से, परे होना चाहता हूँ सामाजिक बंध से।।**

**संकल्प-विकल्प व संक्लेश परे, अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा परे।**
**ख्याति पूजा लाभ व प्रसिद्धि परे, लन्द-फन्द-द्वन्द्व व विवाद परे।।**

**संकीर्ण कट्टर रूढ़ि परम्परा परे, तर्क-वितर्क व कल्पना से परे।**
**निराबाध निर्मल व निष्कलंकमय, होना चाहता हूँ मैं चिदानन्दमय।।**

**आकाश से भी अनन्त अणु से भी सूक्ष्म, बहिरंग शक्तियों से भी अपराभूत।**
**स्वयंभू स्वयंपूर्ण सत्य-शिव सुन्दर 'कनक' का लक्ष्य चैतन्यचमत्कार।।**

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 08.03.2016, रात्रि 1.35 से 2.08

(यह कविता मणिभद्र की जिज्ञासा से बनी।)